धूनी का धुआँ

Dr. Rangey Raghav,

लेखक—
डा० रांगेय राघव

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रकाशक—
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर
हास्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण
फरवरी—१६५८
मूल्य ३)

मुद्रक—राजकिशोर अग्रवाल, कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बाग मुजफ्फरखाँ, आगरा।

भूमिका

सबसे पहले—मैंने योगी के चमत्कारों का वर्णन किया है। हो सकता है कि आधुनिकतावादी इसे स्वीकार न करें। किन्तु योग एक विज्ञान है, जिसमें मनुष्य की उपचेतन मस्तिष्क की शक्तियों को जगाया जाता है। पूर्वजों ने अपने मध्यकालीन वातावरण में उस पर प्रयोग किये थे। भविष्य में इस पर वैज्ञानिक ढंग से मनन होगा। मैंने अपनी आँखों से आग पर चलने वाले, पानी पर ऐसे चलने वाले जैसे धरती पर चलते हैं, इत्यादि कार्यों को करने वाले योगियों को देखा है। गोरखनाथ के साथ ऐसी सिद्धियाँ देखना सहज है।

दूसरी बात! मैंने यह देखा है कि गोरखनाथ का मूल सन्देश और समाज पक्ष क्या था? उनकी अपनी युग-सीमाएँ थीं। परिस्थितियों से अलग हो जाने पर उनके वाक्यों का अर्थ भी परवर्ती युग में बदल गया। गोरखनाथ जब जन्मे थे, भारत में घोर योनिपूजा थी, तभी वे इतने स्त्री-विरोधी लगते हैं। वस्तुतः वे स्त्री विरोधी नहीं थे। वे स्त्री के मातृत्व को फिर से स्थापित करना चाहते थे, क्योंकि स्त्री को तब बौद्धों और तांत्रिकों ने साधना के लिये केवल योनिधारिणी के रूप में लिया था। वैसे योगी और साधक के लिये तो स्त्री का निषेध गोरख का विशेष स्वर था।

तीसरी बात! गोरखनाथ के विषय में मैंने अन्यत्र थीसिस लिखी थी। उसमें मैं व्यक्ति को सामाजिक परिस्थितियों के बाह्याचार में देख पाया था, अब उसे आचार के साथ मनुष्य के अनेक प्रयोगों में प्राप्त्यानुभव की भाँति देख रहा हूँ।

चौथी बात! गोरखनाथ महान् योगी थे, नेता थे, इतने कि उनका असर उनके ५०० वर्ष बाद तक रहा। यहाँ मैंने दिखाया है कि गोरख

पंथ का प्रारम्भ क्या था। अपनी अगली पुस्तक—'जब आवैगी काल घटा' में मैंने चर्पटनाथ को लिया है, जिसमें नाथपंथ की अलाउद्दीन-कालीन परिस्थिति चुनी है। इसके बाद 'लोई का ताना' (प्रकाशित) है, जिसमें योगिपंथ का अन्तिम दृश्य है।

यहाँ संक्षेप में मैं कुछ बातें और बता दूँ—

(१) गोरखनाथ पहले वज्रयानी थे, बाद में वे नाथमत में आये। पहले वे सिद्धामृत कौल सम्प्रदाय में मत्स्येन्द्र द्वारा दीक्षित हुए और अन्त तक उसी का उन्होंने निर्वाह किया। मत्स्येन्द्र जालंधरनाथ के गुरुभाई थे। जालंधर के शिष्य कराहपा थे। जालंधर और कराहपा कापालिक हुए। कापालिक पहले नर-बलि वाले नहीं थे। नर-बलि कालामुख देते थे। बाद में कापालिक मत पर ही यह नरबलि आपड़ी। परन्तु जालंधर और कराहपा वैसे बौद्ध तांत्रिक वज्रयानी प्रभाव में थे। मत्स्येन्द्र पर भी बौद्ध प्रभाव था। बाद में मत्स्येन्द्र योगिनी कौल संप्रदाय की वाममार्गी साधना में चले गये, जिसमें से गोरख उन्हें उबार कर पुराने रास्ते पर लाये। गोरख को बौद्ध लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं। गोरख के साथ वज्रयान का सम्बन्ध रह चुका था तभी मैंने वज्रोली क्रिया का उनके साथ उल्लेख किया है। अमरौघशासनम् में भी इसका उल्लेख है।

(२) गोरखनाथ से पहले यहाँ वज्रयानी, पाशुपत, सौर, गाणपत्य, दत्तात्रेय मत तथा कौल आदि अनेक मत थे जिन पर मैंने कथा में ही प्रकाश डाला है। यह प्रायः ब्राह्मण विरोधी संप्रदाय थे और इनकी पुरानी परम्परा थी अनार्य पद्धतियों का विकास।

(३) उस समय भारत में एक स्त्रीदेश था जहाँ मातृसत्ताक समाज का प्रभाव अधिक था। गोरखनाथ को कराहपा ने गोदावरी के मेले में बताया था कि गुरु मत्स्येन्द्र स्त्री देश में फँस गये थे। योगी बहुत यात्रा करते थे।

(४) गोरखनाथ ने एक भरथरी नामक राजा को शिष्य बनाया था। रानी पिंगला से सम्बन्धित भर्तृहरिशतक के प्रणेता भरथरी

गोरखनाथ से काफी पहले हो गये थे। एक चौरंगीनाथ पूर्व का निवासी गोरख का शिष्य था। दूसरा एक चौरंगीपा था, जो पूरन भक्त कहलाता है। यह गोरखनाथ से पहले हो गया था। बाद में दोनों चौरंगियों का भेद मिट गया और उन्हें एक कर दिया गया। जालंधरनाथ के साथ जिनकी कथाएँ जुड़ी हुई हैं वे गोपीचन्द और मयनावती बंगाल के थे और गोरख और जालंधर के समकालीन नहीं, उनके कई वर्ष बाद हुए थे, परन्तु वे भी किंवदंतियों में समकालीन बन गये हैं। गोपीचन्द को सिंध के पीर पठाओ से भी बाद में ही मिला दिया गया है, जब कि पीर पठाओ सम्भवतः गोरखनाथ का समकालीन था, जिसका गोरख से संघर्ष भी हुआ था। मैंने उपन्यास में योगी-विरोध का कारण स्पष्ट किया है।

(५) तिब्बत में मत्स्येन्द्र पूज्य हैं, गोरख नहीं, बौद्ध चिन्तन से गोरख का विरोध होने के कारण। मैंने तत्कालीन राजनीति, धर्म, दर्शन, समाज सब का ही रेखाचित्र देने का प्रयास किया है।

मेरे गोरखनाथ को वर्त्तमान या आधुनिक विचारधारा का पात्र नहीं समझना चाहिये। वे बड़े जागरूक थे। उन्होंने ६ सम्प्रदाय अपने चलाये, ६ शिव के। और शिव के अठारह में से बारह नष्ट किये। यह स्पष्ट करता है कि उन्होंने योगिमार्ग को प्रशस्त बनाया। शैव और योगिमार्ग वाले सम्प्रदायों को एक किया, वेद के वे विरोधी थे, परन्तु जैसे प्लेटो का स्वप्न था दार्शनिक शासकों का, वैसे ही संभवतः गोरख ने भी उपदेशक योगि सम्प्रदाय चलाया था, जिसमें बड़ी व्यापक भूमि को लिया गया था। वाममार्ग को गोरख ने भारत से खोद डाला। शंकर ने पहले सांस्कृतिक एकता के लिये अपने चारपीठ स्थापित किये थे, उसी प्रकार गोरख के प्रभाव से असंकर मत मिल कर एक हुए जो इस्लाम के क्रोड़ में नहीं गये। बाद में यह सब अपने को हिन्दू कहने लगे। गोरख ने समस्त अनार्य उपासना और योग मार्ग को परिष्कृत प्रत्यभिज्ञा दर्शन और पातंजल योग के निकट ला खड़ा किया, यद्यपि वे वेद-विरोधी थे। तुलसीदास जैसे जागरूक ने तभी कहा था—'गोरख

जगायो जोग भगति भगायो लोग।' गोरख ने इतिहास में एक बहुत बड़ा काम किया था जिसका परिचय स्पष्ट नहीं है। उनका युग भुला दिया गया, यह इतिहास का दुर्भाग्य है। तुलसीदास ने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठापना करते समय गोरख के मार्ग का प्रभाव देखा होगा। गोरख का योग मार्ग एक भूमि थी जिस पर असंख्य निम्न जातियों ने त्राण पाया था। मुसलमानों में भी विदेशीपन या जाति घृणा के बावजूद, कुरान को कट्टरता से देखने की प्रवृत्ति घटी थी। तभी तो सूफ़ियों ने अत्याचारी मुसलमान शासकों को शैतान और माया कहा था। योग-मार्ग के इस विशुद्ध मार्ग पर आसानी से वैष्णव मत पाँव रख कर फैला और फिर भक्ति के सर्वजनीन मानवीय स्वर से लोक पर छा गया।

यहाँ वाममार्ग के बारे में बता देना आवश्यक है।

इस देश की जो सीमाएँ अब हैं, वे पहले नहीं थीं। पहले संस्कृतियों के प्रसार थे। आर्य, द्रविड़, ऑस्ट्रिक, किरात (जो मंगोल हुए) इत्यादि। ये आर्य्य ईरान तक फैले थे। द्रविड़ दक्षिण तक। ऑस्ट्रिक (आग्नेय) जातियों में ही संभवतः नाग इत्यादि थे जिनका जनमेजय इत्यादि से युद्ध हुआ था। किरात परिवार में राक्षस, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, अप्सराएँ आदि थे।

आर्यों से पहले इस देश में किरात, द्रविड़ और आग्नेय संस्कृतियाँ थीं। आर्य्य यज्ञ करते थे और पूर्वजों की पूजा करते थे। द्रविड़ मंदिर बना कर देवताओं की पूजा करते थे। किरातों में चैत्य पूजा थी और वे उपासना के लिये विहार बनाते थे। किरातों का संबंध वाममार्ग से है। यक्ष और राक्षसों की पहले एक ही देवी उपासना थी। उनका मातृसत्तात्मक समाज था। यक्षों में सिद्धियाँ करते थे, भूत सेते थे, मदिरा माँस का प्रचलन था। बाद में जब पुरुष को पता चला, समाज के वैज्ञानिक विकास में स्त्री तो तब जन्म देती है संतान को, जब पुरुष वीर्य स्थापित करता है, तब उन्होंने स्त्री की जननेन्द्रिय 'भग' की पूजा छोड़ी। सबने नहीं। जिन्होंने छोड़ी वे राक्षस (रक्षा करने वाले) बने

और उन्होंने लिंग पूजा प्रारम्भ की। तब तक पितृसत्ताक समाज आ गया था। यक्षों में काम पूजा होने लगी। उसी को राक्षस शिव रूप में पूजने लगे। इनमें परस्पर द्वन्द्व हुआ वही शिव-काम युद्ध है। बाद में संधि हो गई। इन्हीं यक्षों और राक्षसों में तंत्र इत्यादि का मूल है। उस आदिम समाज में जो विचित्र उपासना ध्वनियाँ थी वे ही हुँ, फट् इत्यादि के रूप में बाकी हैं। वर्ण, बीड़ा इत्यादि उसी काल के अन्ध-विश्वासों के अवशेष हैं। अब यह माना गया कि सृष्टि लिंग-योनि के मिलन से होती है। यक्षों में स्त्री पर बंधन कम थे, स्वतन्त्र संभोग था, यही अप्सराओं में दिखता है। परन्तु यक्षों में वृक्ष पूजा भी बहुत थी। वह टाँटेय युग का अवशेष था। आर्यों ने पहले उसी पक्ष को अपनाया। वेद में ही मिलता है कि संसार एक वृक्ष है उसमें यक्ष रहता है। यक्षों के दार्शनिक पक्ष को आर्यों में ले लिया गया। दार्शनिक पक्ष में योग मार्ग—संयम निरोध के मार्ग को भी आर्यों में द्रविड़ और किरातों से ले लिया गया। महाभारत काल से पहले ही अथर्ववेद में अनार्यों के बहुत से विश्वास आर्यों में आ गये, परन्तु सभी अन्तर्भुक्त नहीं हुए। जब तक आर्यों का समाज विकास करता रहा तब तक स्त्री सम्बन्धी रहस्यात्मक उपासना पद्धति को उसने यक्षों से नहीं लिया। महाभारत युद्ध के बाद फिर आर्य्य अनार्यों में बहुत ताल्लुक बढ़े। ब्राह्मणों ने सारे अनार्य्य देवी-देवता, तीर्थ आदि स्वीकार कर लिये; परन्तु वाममार्ग नहीं लिया। उस समय वैष्णव मत का उदय हुआ। वह मानवतावादी चिंतन था, जिसने शीघ्र ब्राह्मणों में जगह बना ली। शैव चिंतन भी दार्शनिक पक्ष में आ मिला। बुद्ध के समय में जो क्षत्रियों ने सिर उठाया तो उसमें कठोर संयम अपनाया गया। परन्तु शाक्य नेपाल में थे। शीघ्र ही उन पर चीन, तिब्बत आदि से यक्ष संस्कृति की स्त्रीपूजा आने लगी। ब्राह्मणों में विष्णु, महादेव और ब्रह्मा के कारण इन्द्र का दर्जा गिर गया था। क्षत्रिय इन्द्र यानी शक्र को पकड़े रहे। शक्र यक्ष देवता से मिल गया और वाममार्ग बढ़ा। पहले वह बौद्धों में घुसा। संयम की अति से ऊब कर नया दर्शन निकाला गया जो वामा=स्त्री मार्ग

में गिरा। शैवों में दो वर्ग थे। एक जो वेद मानते थे, दूसरे जो नहीं मानते थे। अनार्य्य उपासनाओं में योगमार्गी भी थे। जो योगमार्ग वेद को नहीं मानते थे, वे भी भारत में थे। इस प्रकार भूत, प्रेत, जादू, टोना, अन्धविश्वास, पुरानी परम्पराओं के प्रचलन में धीरे-धीरे बौद्ध, अवैदिक शैव और अवैदिक योगिमार्ग वाममार्ग में डूबे। हर्षवर्द्धन के बाद भारत पर विदेशियों का आक्रमण होना बंद हो गया। ब्राह्मण और क्षत्रिय जो पहले विदेशियों से लड़ते थे उनका प्रगतिशील कार्य्य समाप्त हो गया और वे जनता पर बोझ बन गये। दक्षिण भारत में उस समय (८वीं नवीं शती) वैष्णव और शैव भक्ति मार्ग बढ़े। उत्तर में उनका प्रभाव लगभग १३ वीं शती में पहुँचा। प्रजा ने वर्ण धर्म के विरुद्ध विद्रोह किया। शैव, योगिमार्गी, तांत्रिक बौद्ध इत्यादि जो वेद-विरोधी थे खड़े हो गये। इनके पास वामा साधना सब में थी। इसका उन दिनों के गतिरुद्ध समाज में ऐसा प्रभाव पड़ा कि जैन, वैष्णव आदि भी इस वाममार्ग से अछूते नहीं रहे। इन सारे मार्गों के पीछे दर्शन की भूमि थी। कापालिक, कालामुख दर्शन वास्तव में राक्षस जाति की उपासना पद्धति का अवशेष था। कालामुख तो राक्षसों का एक गण ही था।

उन दिनों ही गोरखनाथ हुए। उन्होंने योगमार्ग को वाममार्ग से मुक्त किया। यद्यपि उनके बाद उसने नाथमार्ग में भी असर कर लिया, पर वह फिर जिया नहीं। यह जो योग पद्धति थी—हठयोग—गोरखनाथ ने पुरानी अनार्य कायायोग की प्रणालियों में से शुद्ध की थी और इसे आर्यों में स्वीकृत विशुद्ध योगमार्ग—पातंजल योगदर्शन से मिलाया था। अनार्य शैव दर्शनों को उन्होंने आर्यों में स्वीकृत शैव प्रत्यभिज्ञादर्शन से मिलाया था। वे स्वयं ब्राह्मण विरोधी थे, उसके वर्णधर्म के कारण। परन्तु उपासना और योग में अब ब्राह्मण चिंतन से दूर नहीं रहे क्योंकि उन्होंने आदिम पद्धतियों की विकृत साधनाओं को योगपरक अध्यात्म परक अर्थ दे दिया था। यों वाममार्ग का पतन हुआ। परन्तु गोरख का कार्य्य नीरस ज्ञान और कठोर संयम पर टिका था। गोरख ने जो कार्य

किया यह एक यौनवाद–सेक्सगत–समाज के प्रति विद्रोह था। उस समय योनिपूजा सर्वोपरि छा गई थी। क्योंकि समाज में गतिरोध था, नयापन था नहीं, लोग चमत्कारों में पड़े थे। गोरख ने इस योगमार्ग की स्थापना की और दूसरी (अति) पर जाकर योनिपूजा का विरोध किया। इसमें उन्होंने स्त्री का स्थान ही हटा दिया। स्पष्ट ही यह दूसरा अतिवाद था। वैष्णव मानववादी स्वर जब दक्षिण से उत्तर में आया, उसने शिवशक्ति के द्वन्द्व को राधाकृष्ण के प्रेम का आधार दिया। प्रारंभिक शाक्त विद्यापति, चण्डीदास आदि कवियों ने पहले प्रेम को वासनापरक ही देखा, क्योंकि उनकी परम्परा में शाक्त प्रभाव था। वल्लभाचार्य की परम्परा में यह प्रेम सूक्ष्म होता चला गया। शंकर ने दार्शनिक पक्ष में वेद विरोधियों को हराया और देश की जातियों को वेद के सहारे खड़ा किया। गोरख ने वेद विरोध किया पर दर्शन और साधना में वे ब्राह्मणों के चिंतन के पास खड़े हुए। इस्लाम की मार ने योगी और हिन्दू का भेद न जाना। इसलिये आत्मरक्षा में योगी भी हिन्दू बन गये। योग मार्ग के प्रभाव में अनेक जातियाँ थीं। जो मुसलमान होगईं उनमें भी योगमार्ग का प्रभाव बना रहा।

वाममार्ग का संक्षिप्त इतिहास यही है। अनार्य जातियों में जो काला जादू यानी तंत्र था, वह योग आदि से मिल कर कायायोग बना। उसको शुद्ध दार्शनिक स्तर पर आर्यों ने पहले ही स्वीकार कर लिया था। रहा सहा गोरख के जरिये शुद्ध होकर आ गया। जिस प्रकार वैदिक युग समाप्त हो जाने पर उपनिषद् काल में समस्त कर्मकाण्ड की आध्यात्मिक व्याख्या की गई उसी प्रकार इन वाममार्गी आदिम उपासना पद्धतियों की भी गोरखनाथ ने आध्यात्मिक व्याख्या करके उसे दार्शनिक पक्ष में विशुद्ध कर डाला।

अब प्रश्न यह है कि गोरख की मनुष्य समाज को देन क्या है। उन्होंने योनिपूजा की अति को रोक कर संयम का मार्ग बताया। यह देन नहीं है। यह सामाजिक कार्य है। एक अति का खंडन दूसरी अति से हुआ, परन्तु यह नयी अति भी लोक का आगे चल कर कल्याण नहीं

कर सकी। यह सहज जीवन के विरुद्ध पथ था।

मेरा मत है कि गोरखनाथ ने मनुष्य समाज को बहुत बड़ी देन दी है।

एक। गोरखनाथ के विश्वास मध्यकालीन थे, और सारा वातावरण उसी काल का था। परन्तु गोरखनाथ ने योग को लोक के पास लाना चाहा, तभी एकांत साधना न करके वे सम्प्रदायों को शुद्ध करते रहे, संगठन करते रहे। यह और बात है कि वे अतिवादी थे। अतिवाद तो अतिवाद की प्रतिक्रिया थी। परन्तु गोरख ने यह प्रमाणित किया कि योगमार्ग का प्रयोग समाज के लिये होना चाहिये। प्रश्न यह उठता है कि क्या उनका योग व्यक्तिपरक नहीं है? है, अवश्य है। परन्तु वे मध्यकालीन व्यक्ति थे। उन्हें जो परम्परा मिली थी, उसे वे कैसे छोड़ सकते थे। वे योग को पूर्णरूप से लोक के लिये स्थापित नहीं कर सके, परन्तु उन्होंने एक इंगित किया। मनुष्य के इतिहास में एक प्रयोग करके नई तरफ़ इशारा किया। वे उसे पूरा न कर सके तो उनका दोष नहीं, उनके युग की सीमाएँ भी तो हमें देखनी चाहियें। उस युग में लोग यही मानते थे कि धरती के चारों तरफ सूर्य घूमता है। योग का अर्थ वैज्ञानिक सत्यों का अन्वेषण नहीं है। योग है मनुष्य का संयम और उसी से उसे अनेक विचित्र शक्तियाँ मिलती हैं। योगी जिन चक्र, पद्म इत्यादि को मानते हैं वह सब शरीर की चीराफाड़ी करने पर नहीं मिले हैं। अपने पुराने हिसाबों से ही मध्यकालीन योगियों ने सिद्धियाँ तो हासिल की ही हैं। और यह मनुष्य के लिये एक सन्देश है कि उसमें अभी अपार शक्तियाँ हैं, जो जगाने पर जाग सकती हैं। गोरख ने वैज्ञानिकों को अपना मध्यकालीन प्रयत्न विरासत में दे दिया है।

दो। दूसरी देन यह है कि योग पातंजल योगशास्त्र में चित्त वृत्ति का निरोध है और है सामरस्य। उसका परमात्म से सम्बन्ध नहीं। बौद्धों में आत्मा को भी नहीं मानते थे। जैन भी परमात्म को नहीं मानते थे। गोया चाहे जो उपासना पद्धति हो, दर्शन हो, योग सिद्धि सब ही पा सकते थे। तो योग की असलियत चित्त वृत्ति का निरोध ही

हुई। फिर ब्रह्मचर्य्य, संभोग दोनों अवस्था में मनुष्य ने सिद्धि पाई है। यह भी हम देखते हैं। परन्तु चित्त का निरोध सबने माना है। गोरख का मत था कि पवन, वीर्य्य या चित्त, इनमें से किसी एक को काबू में करने से सिद्धि मिल सकती है। तो सिद्धि मिल सकती है यह इतिहास बताता है। मनुष्य में बड़ी शक्तियाँ हैं यदि वह उनको जगाले। गोरख ने सिद्धि की इन शक्तियों को ही बड़ा नहीं माना, मगर मस्तिष्क के विकास को सर्वोपरि माना। वे उसे रव-सम या ब्रह्म मिलन मानते थे। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जायेगा तो शायद कुछ और भी मिले। इतनी बड़ी दूसरी देन है गोरख की कि उन्होंने मनुष्य के भावी विकास की ओर एक बड़ा इशारा किया।

तीन। तीसरी देन की ओर भी गोरख ने ही इशारा किया है। शासन करने वाले, पूजा कराने वाले समाज के योग्य नेता नहीं हैं। समाज का नेता वास्तव में वह होना चाहिए जो योगी हो अर्थात् स्वार्थ से परे हो। अहंकार, सत्ताधारण, बल की लिप्सा से जो व्यक्ति परे हों, वही शासन करने के योग्य हैं। परन्तु उनकी मध्यकालीन सीमा यह है कि अन्ततः उनका योग मार्ग इतना समाज पक्ष रखकर भी वैयक्तिक ही है। योग वैयक्तिक नहीं रहेगा, सामाजिक हो जायेगा, सब योगी होंगे, यह मैं नहीं मानता। फिर भी वैयक्तिकता किसी सीमा तक शायद और सामाजिक हो सके। तीन प्रकार के मनुष्य के दुख हैं। भौतिक है—गरीबी अमीरी इत्यादि। दूसरे हैं—रोग इत्यादि। तीसरे हैं—तृष्णा, ईर्ष्या, विजय लालसा, पार्टीबन्दी। यह सब अहंकार के प्रभाव हैं। उदाहरणार्थ रूप में पहला दुख काफी कम हुआ है। दूसरे दुख से वैज्ञानिक निरंतर लड़ रहे हैं। किन्तु तीसरा दुख वहाँ बरकरार है और वह भविष्य में मानव के विकास को भयाक्रांत कर रहा है। योगी गोरख का प्रयोग इंगित करता है कि तीसरे दुख का अन्त योग है। प्लेटो ने भी ऐसे ही कल्पना की थी, किन्तु वह दार्शनिक मात्र की कल्पना करता था। योग उसकी समझ के बाहर की बात थी।

तो यह तीन देन हैं गोरख की— मौलिक-मानव-इतिहास

में। गोरख का मार्ग नहीं चला वह इसीलिये कि वह एक अतिवाद के रूप में समाज में आया। दूसरे, उसकी सीमाएँ वैयक्तिक थीं। और उसका सामाजिक अर्थ में निर्वाह नहीं हो सका। तीसरे गोरख की परंपरा प्राचीन थी। उसमें बहुत से अवैज्ञानिक विश्वास भी थे। फिर भी एक बात सत्य है। जिस तरह पुराने हिन्दू बावजूद इसके कि वे सूरज को धरती के चारों तरफ घूमता मानते थे, चन्द्रग्रहण और सूर्य-ग्रहण का समय गणित से बिल्कुल ठीक निकाल लेते थे। इसी तरह अपनी वैयक्तिकता, मध्यकालीन सीमा और आदिम विश्वासों के बावजूद इन योगियों ने प्रकृति पर मानव विजय का एक और रूप दिखाया था और यह पक्ष हमें भविष्य में अवश्य बढ़ता हुआ लगता है, क्योंकि मनुष्य अपना विकास अधिकाधिक करेगा। जिस प्रकार आयुर्वेद में दवाइयाँ हैं, जिस प्रकार रसेश्वरवादियों में दवाइयाँ थीं, पर एलोपैथी की तरह उनके नुस्खे वैज्ञानिक प्रणाली पर नहीं प्रचलित थे, पर होजाने पर दवाइयों की शक्ति बढ़ी, उसी प्रकार योग की भी संभावना है। एक और बात। यूरोप में भी योग का रूप मैस्मेरिज्म है। वहाँ तो इसे एक विज्ञान माना जाने लगा है। पुराने लोग जैसे योगक्रियाएँ छिपाते थे, वैसे ही दवाइयाँ भी नहीं बताते थे। मैस्मेरिज्म में शिवशक्ति आदि विचारों का ज्ञान नहीं है। तभी मेरा विचार है कि योग विशुद्ध रूप में मस्तिक का विकास है और वह मनुष्य की बहुत बड़ी शक्ति को सामने लाने की क्षमता रखता है। उसका दार्शनिक और वैज्ञानिक पक्ष कोई भविष्य में ही प्रगट करेगा, क्योंकि मनुष्य के विकास का इतिहास मुझे यह आश्वसान देरहा है।

मनुष्य की इस महान शक्ति के साथ प्रारंभिक प्रयोग सिद्ध करने वाले योगी गोरखनाथ की देन को मैं इसीलिये बड़ी मानता हूँ और मैंने इसके पक्षप्रतिपक्ष में जो विचार हैं आपके सामने प्रगट किये ही हैं। सारे भारतीय चिंतन के विकास में जैसे इस योग ने अटक लगाई है। सब सामाजिक चिंतन योग में अंत करते हैं अपना। पुराण वादी, शैव, वैष्णव, बौद्ध, तांत्रिक, जैन सबके अनुसार चरमोन्नति कहाँ है! योग

में ! योग है व्यक्तिपरक । अतः अंततः सब धर्म चिंतन, दार्शनिक चिंतन योगपरक होने से व्यक्तिपरक हैं । भारत के भविष्य में संभवतः संसार को पथ दिखाने वाली ज्योति उदय होगी, जो रूस चीन के अनुभवों की अच्छाइयाँ लेगी, अपनी परम्परा के मानवतावाद को लेगी और लेगी योग में निहित मानव जाति की अपारशक्ति को और नये समाज, संसार और व्यक्ति का उदय होगा, जिसमें समाज के विकास के साथ, व्यक्ति घुटेगा नहीं, विकास करेगा ।

धूनी का धूआँ

[ईसा की नवीं सदी के अंतिम वर्ष और फिर दसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के वे कुछ वर्ष। यही इस उपन्यास का युग है। इस समय राजनीतिक रूप में भारत में कोई विशाल साम्राज्य नहीं था, छोटे छोटे राज्य थे। इस समय पश्चिम में अरबों द्वारा फैलाया गया इस्लाम संप्रदाय ईरान पर पूरी तरह से छा गया था और भारत की सीमा पर झुक रहा था। इस समय से लगभग १२५ या १५० वर्ष पूर्व मुहम्मद बिन कासिम नामक अरब ने बगदाद के इस्लामी खलीफ़ा की आज्ञा से सिंध के राजा दाहर पर आक्रमण किया था। बौद्ध और बौद्ध प्रभाव में पड़े जाटों ने ब्राह्मणों के शासन से चिढ़ कर उसे मदद दी थी और सिंध का हिंदू शासन नष्ट हुआ था। परन्तु शीघ्र ही मुसलमान शासकों की धर्मप्रसार करने की तृष्णा देख कर हिंदू जातियों में नया जागरण हुआ था और इस समय वहाँ से फिर अरब भगा दिये गये थे।

इस समय से लगभग १००-१२५ वर्ष पूर्व ब्राह्मण धर्म ने शंकराचार्य के रूप में उत्थान करके चातुर्धाम के रूप में, अखाड़ों में लड़ाके ब्रह्मचारी स्थापित करके ब्राह्मणधर्मी संगठन स्थापित किया था, जिसके दार्शनिक पक्ष में बौद्ध के दर्शन का निचोड़ लेलिया गया था।

यह वह समय था जब यूरोप में ईसाई धर्म का पूर्ण प्रभाव था, क्रूसेड शुरू नहीं हुईं थीं। पोप का अखण्ड शासन सारे यूरोप पर चलता था। विद्वता केवल ईसाई संप्रदाय की पुस्तकें पढ़ने तक में सीमित थी। लोग यह समझते थे १००० ई० में संसार समाप्त हो जायेगा। अतः उनकी राय में चिंतन व्यर्थ था। १००० ई० में यह धारणा जब खण्डित होगई तभी यूरोप में नई लहर दौड़ी, फिर यूनान और इटली के पुराने

ग्रंथों का पढ़ना प्रारंभ हुआ और यूरोप में पुनर्जागरण अर्थात् रिनेसाँ हुआ।

इस समय चूँकि अरबों ने इस्लाम को तलवार के बल पर फैलाया था। प्राचीन ईरान देश में इस्लाम फैल गया था। शीघ्र ही कम सभ्य अरबों को प्राचीन संस्कृति ईरानी संस्कृति ने दबा लिया था। ईरान के मुल्ला वर्ग में पुराना गर्व तो था ही, नयी कट्टरता छागई और उत्तर पश्चिम से आने वाली तुर्कों की बर्बर जाति को उसने स्वीकार कर लिया। तुर्क काफी बर्बर थे। उनके पीछे कोई सांस्कृतिक परंपरा भी नहीं थी। ईरानी संस्कृति ही उनकी संस्कृति बनी। इस झगड़े में ईरान और ईराक में जो शैव, पाशुपत और बौद्ध तथा वेदांत धर्मावलंबी थे, जो योगमार्गी थे उनमें इस्लाम के आने पर भीतरी साधनाएं चल पड़ी थीं; जिनका प्रभाव आगे सूफ़ीमत के रूप में स्पष्ट मिलता है। अनेक मुसलमान फ़कीर भारत में बंगाल आसाम तक आते जाते थे।

इस समय तक भारतीय व्यापारियों का मार्ग यूरोप की ओर उत्तर में ईरानी और अरब पूरी तरह से छीन चुके थे। समुद्र व्यापार इनके हाथ से अरबों ने छीन ही लिया था। थोड़ा सा व्यापार तिब्बत आदि से चलता था। इसलिये आर्थिक आवश्यकताओं के अभाव में राजनैतिक चेतना होने पर भी बड़े राज्य नहीं थे, क्योंकि जहाँ का उत्पादन तहाँ ही खत्म होता था। हाँ, दस्तकारी बढ़ गई थी, पर जीवन में कोई नवीनता न थी। राजनैतिक चेतना का प्रमाण है त्रिलोचनपाल का अनेक राजाओं को एकत्र करके महमूद गज़नवी के बाप से लड़ना, पृथ्वीराज का अनेक राजाओं को एकत्र करके गोरी से लड़ना, जिस युद्ध में हिंदू स्त्रियों ने गहने बेचकर सिपाहियों के लिये चंदा इकट्ठा किया था। राजा दाहर ने भी मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के समय राजाओं को बुलाया था जो समय पर न जा सके। इसी चेतना के कारण महमूद गज़नबी से बिना लड़े ही उसकी आधीनता स्वीकार कर लेने पर एक राजा को गंड ने मार भी डाला था। परन्तु गुप्त और पुष्पभूति साम्राज्यों के निर्माण के पीछे जो आर्थिक कारण था वह न

रहने से विशाल साम्राज्य यहाँ नहीं बन सका, जो तभी बना जब मुगलों के समय में व्यापार ईरानियों के हाथ में चला गया और दूर दूर तक फिर फैल गया।

इस समय तिब्बत में बौद्धधर्म की तांत्रिक प्रणालियाँ खूब प्रचलित थीं। हूण आदि विदेशी जातियाँ भारत के विशाल समाज में मिल चुकी थीं। जातियों की उथल होरही थी।

ईसा की नवीं सदी के अंतिम वर्ष और फिर दसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के वे कुछ वर्ष—]

[१]

वह एक पच्चीस वर्ष का युवक था। मुख पर हल्के मुलायम रोम थे, गोरे रंग पर श्याम छाया अत्यंत आकर्षक लगती थी क्योंकि देह तप्त कंचन सी स्निग्ध दिखाई देती थी। उसका मस्तक चौड़ा था, लंबी जटाएं उस पर छाई थीं। नाक न छोटी, न लंबी। केवल ओठों का ऊपरी भाग और नयन देखने से कभी कभी लगता था, कोई मृगनयनी है।

कोने में बैठा था और ऊंघने लगा था। बाहर दालान में लाल कपड़े को धोती के स्थान पर बाँधे एक अधेड़ किंतु हृष्ट पुष्ट व्यक्ति बैठा था। सामने काली मिट्टी बिछा रखी थी, जिस पर अहिबल चक्र अंकित था।

भीतर से आवाज़ आई : 'आज सर्वतोभद्र मण्डल की ही भूतशुद्धि करोगे न?'

स्त्री स्वर था।

'नहीं।' अधेड़ ने कहा और पुकारा : 'अनंगवज्र!'

भीतर से युवक आया।

'बैठ।'

युवक बैठ गया।

'गुरु परंपरा जानता है ?'

'नहीं।'

'सोडशी गुरुक्रम कहता हूँ । आनंदनाथ देव प्रथम हुए, फिर पर प्रकाश। तब पर....

'यह तो जानता हूँ, आचार्य।'

अधेड़ प्रसन्न हुआ। फिर कहा : 'तो तुझे महानीलक्रम में दीक्षित करूँ।'

अनंगवज्र स्तब्ध रहा। गुरु ने कहा : 'अभी और विचार करले।'

स्त्री बाहर आगई थी। डोमनी थी। गोरी! इस समय शृंगार किये थी और उन्नत स्तनों पर उसका हार झूल रहा था।

अधेड़ व्यक्ति ने कहा : 'तैयार हो भैरवी !'

'हाँ महादेव।'

'तो आओ। दही, माँस, मत्स्य, तैयार हैं।'

अनंगवज्र की ओर देखती युवती आ गई और कटि का वस्त्र उसने खोल दिया।

अनंगवज्र उठ खड़ा हुआ।

भैरवी हँसी।

वह झटका खाया सा पीछे हट गया।

अधेड़ व्यक्ति ने कहा : 'मूर्ख! क्यों घबराता है । सौर, लकुलीश गाणपत्य, कापालिक, और सिद्धमत के सब अनुयायी योनिपूजा ही रत हैं। देख यही महा शक्ति है। श्मशान के धतूरे से ही मैंने इस प धूमावती की उपासना की है ।' तब तक हँस कर डोमनी ने मदि उँडेल कर अपना प्याला भर लिया और गटगट करके पी गई।

अनंगवज्र ने कहा : 'स्त्री ! यह पापिनी है, माया है। मैं नाथ हूँ इसे नहीं छुऊँगा।'

'क्यों ? नाथ स्त्री को शक्ति नहीं मानते ?'

'किन्तु इसमें विन्दु खिसक जाता है।'

'बिन्दु! वीर्य्य! मूर्ख! यह योनि नहीं है, यज्ञकुण्ड है। साधक इसमें लिंग के स्रुवा से वीर्य्य का आज्य डालता है....'

अनंगवज्र हठात् स्त्री की ओर देख उठा। उसका रोम रोम आकुल हो उठा। फिर उसने नयनों को ढँककर कहा : 'नहीं जानता हूँ। ब्राह्मण हूँ। मैं वेद का प्रभुत्व नहीं मानता, किन्तु....'

'किन्तु क्या? पागल न बन! कामरूप से उद्यान, दक्षिण के श्री पर्वत तक देवी पीठ हैं। नालंद और सोमनाथ के आचार्य्यों के साथ मैंने विद्या प्राप्त की है। तू दत्तात्रेय सम्प्रदाय वालों से तो नहीं मिला?'

'नहीं।' अनंगवज्र ने कहा : 'मुझे शाँकर मतानुयामी एक ब्रह्मचारी मिला था।'

ब्रह्मचारी सुनकर डोमनी हँसी और उसने एक मांस का टुकड़ा उठा कर खाया। फिर वासना से विह्वल सी अनंगवज्र को देखकर बोली : 'आ! मेरे पास! मैं कापालिक की शक्ति बनकर रह चुकी हूँ। क्या पायेगा ब्राह्मणी पाकर। उसका तो कोई फल नहीं, फल है डोमनी में। तूने कौलमार्गियों की बात नहीं सुनी? बाँयें रमणकुशल रामा हो, दाँये हाथ में मदिरा का प्याला, सामने मसालेदार बना सूअर का गरम-गरम माँस, कंधे पर वीणा हो, सद्गुरु का प्रपञ्च है, कौलधर्म परम गहन है, योगियों को भी अगम्य। शक्ति है। शक्ति तेरी जागी नहीं। उसे भूखा मत मार। उन वैखानसों के मन्दिरों में क्या पायेगा ब्राह्मण। आ। आज मैं तुझे परम सुख दूँगी।'

अनंगवज्र दीवार पर टिक गया। उसने कहा : 'तू माँ है न!'

'माँ हूँ, रमणी भी।'

'माँ ही है।'

'माँ।' अधेड़ चिल्लाया—'नपुंसक! तुझमें महादेव अभी तक शव है। आ, यह शक्ति तुझ पर बैठ कर एक बार रमण करेगी, तभी तू इ प्राप्त करके शिव बनेगा।'

'नहीं।' अनंगवज्र अब अधेड़ की जलाई अग्नि की ओर देखकर कहने लगा—'शिव आदिनाथ हैं। उन्होंने काम को भस्म किया था।'

'काम को ही तो भस्म करने का यह भी मार्ग है। भूख से क्यों तड़पते हो। जो सहज है, वही करो। प्राप्ति में सहज है। सहज में तृप्ति। तृप्ति में अविचल ध्यान। ध्यान में समाधि और युगनद्ध में जीवन का परम फल। कहाँ नहीं है यही! आ निरंजन बन। शैव, बौद्ध, शाक्त सब यही मानते हैं। क्या तू नहीं मानता कि जो है वह शिव और शक्ति है····क्या यह सृष्टि केवल इन्हीं के मिलन से····

अनंगवज्र के नेत्रों में आग जलने लगी। उसने कहा: 'मानता हूँ। यह सत्य है। शिव शक्ति! किन्तु शक्ति अपने इस रूप में वीर्य्य का क्षय करती है न? आनन्द की चरम प्राप्ति है यही, परन्तु उसका अन्त तो नश्वर है। मैं शाश्वत सुख चाहता हूँ।'

'तो चला जा यहाँ से।' डोमनी ने कहा: 'कहीं भी तू कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकेगा।'

अनंगवज्र देखता रहा। अधेड़ ने कहा: 'विघ्न न डाल। चला जा।'

अनंगवज्र चल पड़ा। किंतु उसकी आँखों के आगे अभी तक डोमनी का सुंदर शरीर—नग्नरूप—नाच नाच जाता था। दूर आग दिखाई देरही थी।

आग! यहाँ कैसी आग!

वह आगे बढ़ा।

अच्छा। श्मशान थी। घना वृक्ष था पास। अनंगवज्र उसके नीचे लेट रहा। और उसे याद आने लगा। यह उसने क्या किया? जीवन में सुख था, समृद्धि थी। ब्राह्मण कुल था। संस्कृत पढ़ी, पाण्डित्य प्राप्त किया। और एक दिन देखा एक योगी को। कानों में कुण्डल धारण किये था वह! भूली हुई बात याद आई। जब वह बारह ही वर्ष का था तब देखा था एक ऐसा ही रमता जोगी। पितृव्य की इच्छा थी कि भतीजा जाकर नालंदविहार में स्नातक हो और किसी राजा के यहाँ मर्यादा पाये। किंतु हुआ क्या? भतीजा तभी से उस रमते साधू के

जीवन की कल्पना करने लगा। जब समय मिलता ऐसे घूमते साधुओं से बातें करता। पठान लोगों में अनेक बौद्ध और पाशुपतों का आना जाना लगा रहता जो ईरान इराक से भी आगे बड़ी ज्वालामुखी (कोहकॉफ में एक तेल का स्रोत जिसमें से अग्नि निकलती थी—अब रूसियों ने उसमें से तेल निकाला है) तक चले जाते थे। कितने घूमे हुए थे वे लोग। कामरूप, कामाख्या, हिमालय, उड़ीसा, बंगाल, दक्षिण में श्रीपर्वत और पश्चिम में हिंगलाज तक में विभिन्न प्रकार के साधू घूमते रहते। कितनी कथाएं न कहते ? बालक था तब अनंगवज्र। तब उसका नाम भी तो अनंगवज्र नहीं था। लेकिन जो व्यक्ति मर चुका है अब उसका नाम याद करने से भी क्या लाभ। तब वह पठान अनंगवज्र ब्राह्मण पढ़ लिख कर घर के लोगों को सोता छोड़ कर चला आया। क्यों? कुछ करने की तृष्णा थी। वह साधु होना चाहता था। सच्चा साधु। योगी। काम क्रोध मोह से परे। क्या है यह जीवन! ब्राह्मण केवल दंभ और पोथियों का भार ढोता है। और तब वह युवक घूमने लगा है। कहाँ कहाँ नहीं गया वह। सारा भारत छान डाला। सूफियों से मिला, किंतु कहीं शांति नहीं मिली। और तब वज्रयानी सिद्धों ने उसे अपने से प्रभावित किया। पठान तरुण अनंगवज्र बना। पहली बार भैरवी से उसने संभोग किया किया तब तक वह योग की कई सिद्धियाँ प्राप्त कर चुका था और उसने वीर्य को स्खलित होने के स्थान पर वज्रोली क्रिया से रोक कर उल्टे स्त्री के रज को अपने भीतर खींच लिया। भैरवी का आनंद नष्ट होगया। और अनंगवज्र चला गया। शिव के विभिन्न पंथों में रह कर देखा, कहीं भी संतोष और तृप्ति नहीं मिली।

कापालिक सर्वभक्ष के साथ उसने नरबलि देखी। और फिर शंकराचार्य के अनुयायियों से मिला, किंतु वहाँ भी उसे पथ नहीं सूझा।

वह उठ बैठा और आधीरात होजाने के कारण प्राणायाम करने लगा। जब वह उठा तब श्मशान में से उसने एक स्त्री और पुरुष को आते देखा। स्त्री नशे में लड़खड़ा रही थी। पुरुष उसे संभाल रहा था।

पुरुष कह रहा था : 'शक्ति ! शक्ति !!'

शव पर लेट कर संभोग करके आई हुई स्त्री बकने लगी: 'माँस बड़ा अच्छा था...

अनंगवज्र ने सुना पुरुष कुछ बोलता जारहा था : 'फट् फट् स्वाहा....

शायद वह किसी प्रेत की सिद्धि कर रहा था। उसके हाथ में नरकपाल था।

उसे सिद्ध ढेरढण की याद हो आई। देर तक वह सोचता रहा। फिर अचानक ही सरहपा का एक दूहा बड़बड़ा उठा।

चारों ओर फिर सन्नाटा छा गया। गाँव पास ही था। साँझ ही को वहाँ राजपूतों और ब्राह्मणों का बयनजीवियों से दंगा हुआ था। ब्राह्मणों और राजपूतों ने उनके घर लूटे थे क्योंकि वे वेदनिंदक अधम-शूद्र बौद्धों के भड़काने से कर देने का विरोध कर रहे थे।

युवक फिर सोचने लगा। सारे देश में राजा हैं, फिर भी कहीं कुछ स्थिर नहीं है। नित्य ही राजा परस्पर युद्ध करते हैं। सारा झगड़ा भयानक हो उठता है। जाति बंधन में मनुष्य छटपटा रहा है। मनुष्य की मुक्ति कहाँ है।

न जाने वह कब लेट कर झपक गया पर जागा तब पौ फट रही थी।

भूम्बरी ! भूम्बरी !!

स्वर सुनाई दिया।

सिद्ध है ! सिद्ध है।

अनंगबज्र ने मुड़ कर देखा कुछ गाँव वाले दूर ही खाने का सामान रख कर चले जा रहे थे।

अनंगवज्र ने सोचा। यह भी सम्भवत: पलिहिह की भाँति होगा।

अनंगवज्र उठा और भूम्बरी के समीप चला गया।

भूम्बरी लगभग चालीस वर्ष का व्यक्ति था। उसने अनंगवज्र को देखा तो बोला : 'आ जा लड़की आ जा। मुझसे संभोग करेगी।'

अनंगवज्र चौंका, परन्तु भूम्बरी ठठा कर हँसा और उसने एक घृणित इंगित किया। फिर श्मशान में पड़ी चाण्डाल की झूठन खाता हुआ वह नाचने लगा और तब भस्म में लेट गया।

अनंगवज्र समीप चला गया। अब वह समझ गया था कि भूम्बरी पाशुपत था। भूम्बरी उठा और स्त्री का स्वाँग करके बोला : 'हाय मुझे छेड़ना नहीं।' फिर वह उठा और मंथर गति से अपने नितंबों को हिला कर लोकनिंदित रूप से अनंगवज्र के सम्मुख नग्न हो गया।

अनंगवज्र ने कहा : 'कुत्सित !'

'कुत्सित !' भूम्बरी ने चिल्ला कर कहा : 'पशु ! तू पशु है। तुझे पशुपति ने बाँध रखा है। बद्धजीव ! तू सांजन है। निरंजन बन ! तू मेरे इस व्रत को कुत्सित कहता है !'

अनंगवज्र ने कहा : 'पाशुपत ! कारण, कार्य, योग, विधि और दुःखान्त—पाँचों पदार्थों में से मैं इस विधि को ही कुत्सित कहता हूँ, तुम्हारी।' इसमें मुक्ति नहीं है। यह सब भी स्त्री का ही शासन है। तीनों लोकों में काल ने योनिरूपी जाल फँसा रखा है। उसमें ही सारे उद्भिज, अंडज, स्वेदज और समस्त प्राणी फंसे छटपटा रहे हैं। पुरुष की गो-भक्षण करने वाली शक्ति का तुम दुरुपयोग कर रहे हो !

अनंगवज्र ने जीभ पलट दी। वह सुई की नोंक से उसे धीरे-धीरे छेद कर काट चुका था और वह उसे भीतर पलट देता था। उसने यह सिद्धि प्राप्त की थी। भूम्बरी देखता रहा और उसने भस्म उठा कर अनंगवज्र की ओर फेंक कर कहा : 'मूर्च्छित होजा।'

किन्तु अनंगवज्र हँसा और उसने हाथ फैला दिये, जिनकी ओर देख कर भूम्बरी ऐसा देखता रह गया जैसे वह स्थिर हो गया हो।

'कौन हो तुम !' उसने पूछा

'अनंगवज्र।'

'कहाँ से आ रहे हो ?'

'भोट देश से (तिब्बत)।'

'क्यों छोड़ दिया ?'

'मैं वज्रयानी था, किन्तु मेरा मन उसमें रमा नहीं। युगनद्ध, युगवद्धावस्था में भी मुक्ति नहीं है। साधक सब कुछ छोड़ कर योनि पूजा में लगे रहते हैं। गंधर्वक्रम, महानील क्रम, सारे क्रमानुयायियों में प्रातः से लेकर योनिचर्य्या मात्र रह गई है।'

'तो क्या तू अब वज्रयानी नहीं रहा ?'

'नहीं।'

'फिर कहाँ जायगा ?'

'पता नहीं।'

'तेरा गुरु कौन है ?'

'गुरु मैं चाहता हूँ पा जाऊँ। किन्तु कहाँ पाऊँ ?'

'कभी गुरु मिले तो मुझे भी दीक्षा देना न भूलना।'

'मानता हूँ।'

'तू तरुण योगी है, कहाँ सीखा इतना सब कुछ ?'

'अनेक यात्राएँ की हैं, बहुत पढ़ा, सारी सारी रात इस देह और चित्त से हठ करके बिता दीं। अनेक गुरु रहे हैं। किसी ने कुछ सिखाया, किसी ने कुछ, किन्तु लगता है कुछ नहीं जानता, कुछ नहीं पाया।'

अनंगवज्र उठा और चल पड़ा। भूम्बरी देखता रहा, फिर अचानक पुरानी तरंग सी लौट आने पर अश्लील इंगित करने लगा।

ग्राम आ गया था।

तरुण योगी अनंगवज्र कुँए पर ठहर गया और उसने कुँए पर पानी खींचती युवतियों को देखा, जो उसे देख कर कुछ उत्सुक हो उठी थीं।

'माँ, पानी पिला।'

एक तरुणी ने कलश उठा कर कहा : 'कौन मार्ग है ?'

'माँ, प्यास लगी है।'

'मार्ग बताओ जोगी।'

'माँ, गुरु चाहिये।'

'भैरवी नहीं ?'

युवतियाँ हँस पड़ीं।

तरुण बुद्धि के कारण युवतियों को साधना के परपुरुषगमन का मार्ग बड़ा अश्लील सा परन्तु रोमांचक लगता था।

युवती पानी ढालने लगी। योगी पीने लगा। पीकर कहा : 'माँ! तेरा मंगल हो।'

युवती ने टोका : 'जोगी!'

'हाँ माँ!'

'भिक्षा कहाँ लेगा ?'

'जो दे देगा माँ।'

एक पैंतीस वर्ष की स्त्री ने कहा : 'मेरे साथ चल।'

योगी ने देखा। राजा के अन्तःपुर की दासी सी लगती थी, विलासिनी। कहा : 'माँ! द्वार द्वार जाता हूँ। रुकता नहीं, जो देता है,लेता हूँ, बढ़ जाता हूँ। कहीं रुक कर नहीं माँगता।'

स्त्री हँसी। कहा : 'तू कभी कुछ चमत्कार भी दिखाता है जोगी?'

'चमत्कार तो छोटी सिद्धि है माता। उसमें सन्तोष नहीं।'

'तो नहीं जानता।' तरुणी ने कहा।

पानी से एक पोखर भरी थी। उसमें पशु पानी पीते थे। योगी ने उत्तर नहीं दिया। उसी की ओर चल पड़ा और स्त्रियों ने आश्चर्य से देखा कि तरुण योगी पानी पर ऐसे चल कर पैदल निकल गया, जैसे वह धरती पर चला हो।

'जोगी!' युवती चिल्लाई, किन्तु योगी ने नहीं सुना।

दूसरे दिन ग्राम में संवाद फैल गया। दत्तात्रेय संप्रदाय का जोगी कोरंटक सुन कर खौल उठा। जोगी अनंगवज्र अपनी साधना समाप्त करके उठा और घर घर भीख माँगने निकल पड़ा। आज उसे देखने लोग निकल पड़े। जब वह एक द्वार पर पहुँचा वही सुमुखि तरुणी निकल पड़ी और कहा : 'जोगी भीतर आ!'

'माँ! जोगी भीतर नहीं आता।'

'महाफल दूँगी।'

'नहीं माँ ! तेरे हाड़माँस में फल नहीं मिलेगा ।'

तरुणी का मुँह अपमान से काला पड़ गया। बोली : 'तो फिर अपनी राह ले ।'

जोगी बढ़ गया । तरुणी वहीं विक्षुब्ध सी द्वार की चौखट पकड़े खड़ी रह गई। दरवाज़ा काठ का था । और था जालीदार। उस पर एक युवती की देह बनी थी और बीच-बीच में उसे उभार दिया गया था।

संध्या होने आई !

जोगी कोरंटक ने कहा : 'मार्ग यही है । दीक्षा लेगा ?'

'परन्तु पहले मुझे पथ का इंगित दें।'

'पूछ।'

'ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है कि दंडधारी ब्राह्मण। योग श्रेष्ठ है कि अन्य कुछ ? स्वच्छन्द मुक्ति का मार्ग कौन सा है ?'

कोरंटक ने कहा : 'यह कोई भी पंथ उतना श्रेष्ठ नहीं, जितना आत्मरमण ।'

अनंगवज्र ने पूछा : 'अपनापन मिटाना ही यदि श्रेष्ठ है तो स्वामी तुम्हारी उत्पत्ति कहाँ से हुई ?'

कोरंटक ने क्षणभर देखा और कहा : 'वत्स ! गुप्त से ही गुप्त प्रगट हुआ है, वही पुरुष की छाया है । गैबी पुरुष गैब से आता है ।'

अनंगवज्र ने कहा : 'किन्तु फिर जलबिंब की काया क्यों खीझती है ।'

कोरंटक हँसा । कहा : 'न यह जलबिंब है, न दरपन की छाया ही । न काया है न माया ।'

अनंगवज्र ने उसका विश्वास देखा और फिर पूछा : 'कौन आता है स्वामी, ये कौन चला जाता है । जो बोलता है वह कहाँ समा जाता है ? इस सब में गम्य क्या है ?'

कोरंटक ने कहा : 'अवधूत ! न कोई आता है, न जाता है । सोच कर देख ।'

अनंगवज्र प्रभावित हुआ । बोला: 'महान योगी दत्तात्रेय परमज्ञानी

थे। परन्तु स्वामी ! तब फिर अवधूत के माता पिता गुरु, आसन, गेह कहाँ रहेंगे ?'

कोरंटक ने कहा : 'अवधूत ! क्षमा ही उसकी माता है, सत्य ही पिता है, गुरु है ज्ञान । आत्म-परिचय ही उसकी स्थिति है। अलेख आसन में वह विश्राम करता है।'

'तो फिर मुक्ति कौनसा दुख सहेगी स्वामी ! कौन विनष्ट हो जाता है, फिर भी कौन है जो अजर अमर बना रहता है।'

धूनी जल रही थी। उसकी अग्नि की लपट विशाल पीपल के बोटे को चाटे जा रही थी। आकाश नीला होगया था । असंख्य नक्षत्र बिखर आये थे।

कोरंटक ने देखा ऊपर और कहा : 'अवधूत ! सत्ययुग से भी पहले यही आकाश था। असंख्य कोटि प्राणी आये और चले गये; किन्तु दत्तात्रेय गुरुदेव के अतिरिक्त किसी ने भी वास्तविकता को नहीं जाना।'

पेड़ों के पीछे एक युवती ने अब सिर उठाकर देखा और वहीं बैठ गई। उसके पास एक तलवार थी, नंगी, जिसे वह सीधे हाथ में पकड़े थी। एक झीना काला कपड़ा ओढ़नी के रूप में उसके सिर और छाती को ढँके था। कजरारी आँखें इस समय नशीली सी हो रही थीं। वासना से उस स्त्री ने अपने वक्ष को वृक्ष से सटा दिया और इनकी बात समाप्त होने की प्रतीक्षा करती रही।

अनंगवज्र ने देखा। कोरंटक ने फिर कहा : 'प्रकीर्त्ति विनष्ट हो जाती है, ब्रह्म अजर-अमर बना रहता है।'

'कौन सूक्ष्म है, कौन स्थूल है, कौन डाल है, उसकी जड़ कहाँ है ?' कोरंटक ने आग को धधकाते हुए कहा—'ब्रह्म सूक्ष्म है, तत्त्व स्थूल है, पवन डाल है, मन ही उसका मूल है। यही गुरु का ज्ञान है।'

स्त्री ने देखा अनंगवज्र के नेत्र चमक से उठे। मानों उनमें एक विचित्र आकुलता छा गई। उसका शरीर स्थिर हो गया था। स्त्री ने वृक्ष को छोड़ दिया और अपना आँचल मुख में भर लिया।

अनंगवज्र ने कहा : 'स्वामी, कौन हैं गुरु, शिष्य कौन है ? अनंत

सिद्ध से मिलन किस प्रकार हो सकता है ?'

कोरंटक क्षण भर सोचता रहा। अनंगवज्र ने फिर कहा : 'देव ! ब्रह्मकमल का भेद क्या है ?'

'तेरी कुण्डलिनी जागी है ?'

'अभी नहीं। किंतु उसमें ही सब कुछ तो नहीं स्वामी।'

'तो सुन कि परमात्मा ही गुरु है जिसे बौद्ध, जैन नहीं मानते। वे शाक्तों और शैवों से प्रभावित हो रहे हैं। परन्तु जान ले कि मुख्य शिष्य आता है। और ब्रह्म कमल ऊर्ध्वमुख खिला हुआ है।'

अनंगवज्र के मुख पर धूनी की लपट का प्रकाश काँपने लगा। निर्जन रात्रि में पवन सनसनाने लगा। कोरंटक वहीं एकाँत में रहता, भस्म रमाये रहता और कभी-कभी पागलों जैसा व्यवहार करने लगता था। जाति का जुलाहा था कभी, फिर साधु होगया। ऐसे निम्न जातियों के असंख्य सिद्ध हो चुके थे उन दिनों, जिन्हें देखकर ब्राह्मण व्यंग्य से कभी-कभी मुस्करा भी देते थे, किंतु जिस तेजी से शाक्त प्रभाव बढ़ रहा था, उसके देखते अब उसका विरोध घटता जा रहा था।

युवती को हठात् एक कंप सा हो आया। उसने सुन रखा था कि यह लोग कभी-कभी विकराल क्रियाएँ भी करते हैं। उसके रोंगटे खड़े होगये, किंतु तभी उसे अनंगवज्र का शब्द सुनाई दिया—

'स्वामी, उन्मन कौन है और कला क्या है ? त्रिकुटी का ताला किस तरह खुलता है ? नाद और बिंदु का भेद बताइये।'

उस स्वर को सुनकर वह फिर प्रकृतिस्थ हो गई। किस पागलपन ने उसे अनंगवज्र के लिये लोकलाज के पुल पर चढ़ा कर यहाँ भेज दिया था। यह वह अभी तक समझ नहीं पाई थी। वह ग्राम-सुन्दरी थी। उसको जोगी यों ही टाल गया था। प्रतिस्पर्धा ने उसे हिला दिया था। ऐसा भी क्या जोगी ! जोगी तो स्त्रियों के चरणतल चूमते हैं, यही वह सुनती रही थी ! और अनंगवज्र ! अनंग तो था ही वह लावण्य में, हृदय का वज्र भी था।

कोरंटक ने देर तक आकाश की ओर देखा और कहा: 'उन्मन ध्यान

है अवधूत ! पवन विधि कला है।। इस पवन का नियंत्रण ही मनुष्य की प्रारंभिक सिद्धि है।'

'मानता हूँ, परंतु स्वामी ! कुण्डलिनी ही क्या सिद्धि का अन्त है?'

'यहीं रह कर साधना कर अवधूत ! प्रासव्य प्राप्त होगा। देख वह आकाश कैसा शून्य है। यह रत्न है न? यही आदर्श है। रव-सम बनना होगा। उस समय रमणी से रमण करते हुए भी मन विकारग्रस्त न होगा। अब जाकर सो रह।'

अनंगवज्र उठ गया और एक ओर मृगछाला बिछा कर लेट रहा। युवती धीरे-धीरे वहीं पहुँची।

अन्धकार में किसी ने योगी का पाँव छुआ और दबाने की चेष्टा की।

'कौन ?' योगी उठ बैठा।

देखा !

वही युवती।

युवती मद-विह्वल सी आगे बढ़ आई, नयन अधमुँदे से। गंधित केशों से उठती लूक सी योगी के चारों ओर लिपट गई। उसके होंठ अब और पास आगये, आगये और पास....

योगी हटा नहीं। घबराया नहीं। स्थिर रूप से मुस्कराया और कहा : 'माँ !'

स्त्री चौंक उठी। एक क्षण ऐसा लगा जैसे वह अपने को सँभाल नहीं पाई। फिर फूट फूट कर रो उठी, जिसका शब्द कोरंटक तक जा पहुँचा। उसने पुकारा : 'अवधू ! कौन रोता है? कौन दुखी है?'

'स्वामी ! माया की पराजय भी पीड़ित होती है, जब उसका छल नहीं चलता, यही देखता हूँ।'

कोरंटक समीप आया।

'स्त्री है?'

'हाँ जोगी।'

'क्यों आई है?'

'पूछो माँ से।'

कोरंटक के कठोर हाथ ने स्त्री की कलाई पकड़ ली और अपनी ओर खींचा। स्त्री बिलबिला उठी। उसने कहा : 'छोड़ दे मुझे!'

किंतु कोरंटक उसे अपनी कुटिया की ओर खींच ले चला। अनंगवज्र स्तब्ध सा देखता रहा।

हठात् स्त्री ने झटका देकर हाथ छुड़ा लिया और जोगी अनंगवज्र के शरीर से चिपट कर कहा : 'मुझे बचा निर्दयी! यह हिंस्र पशु है।'

अनंगवज्र ने पास पड़ा त्रिशूल उठा लिया और कहा : 'जोगी ? क्या स्त्री इतनी व्याकुल कर देने वाली है ?'

कोरंटक ने हँस कर कहा : 'अरे यह माया है। स्वयं आई है। इसमें दोष नहीं।'

'किन्तु यह बलात्कार है।'

'नारी सब अवस्था में एक ही सत्य के लिये है।'

स्त्री फूत्कार कर उठी।

अनंगवज्र ने कहा : 'वह जननी है कोरंटक! तू विलास से अन्धा है। उसे जाने दे, वह माता है।'

कोरंटक चिल्लाया : 'तू मूर्ख है, मेरा क्रोध नहीं जानता; अन्यथा....

कोरंटक ने त्रिशूल उठाया।

अनंगवज्र ने हाथ उठाकर कहा : 'रखदे!'

त्रिशूल कोरंटक के हाथ से गिर गया।

दूर पर मशालें दीखने लगी थीं, कोई कोलाहलसा उठा आरहा था। शायद गाँव वाले आ रहे थे। उन दिनों स्त्रियों को उठा लाना सिद्धों के लिये आश्चर्यजनक बात नहीं थी। फिर भी ग्रामवासी सिद्धों से डरते थे। अनेक-अनेक आश्चर्य जो दिखाया करते थे वे। शायद अब सुन्दरी की अनुपस्थिति प्रगट होगई थी। परन्तु जब भीड़ आई तब उसने देखा कि कोरंटक मुँह के बल पड़ा रो रहा था और सुन्दरी गंभीर अवाक् सी खड़ी थी। अनंगवज्र मुस्कराता सा खड़ा था।

भीड़ आई, कोलाहल छँट गया, सन्नाटे के फूल ने पंखुरियाँ खोल कर अंधेरे की लहरों पर दो चार साँसें भरीं!

'जाओ माँ।' अनंगवज्र का स्वर उठा ? 'उठ।'

अनंगवज्र ने आज्ञा दी। कोरंटक उठ खड़ा हुआ।

भयभीत से लोग देखते रहे। सुन्दरी चली गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब जोगी भीख लेने आया सारा ग्राम उसे झुक रहा था और कोरंटक भस्म रमाये श्मशान में जाकर ध्यानस्थ होकर बैठ गया था, मानों वह अपनी ग्लानि को भूल जाना चाहता था।

जब जोगी सुन्दरी के द्वार पर पहुँचा आँसुओं से भीगे मुख ने देखा और कहा : 'पुत्र!'

न जाने वह कितने पश्चाताप का स्वर था।

अनंगवज्र ने कहा : 'माँ आशीष दो। यह पुत्र देश-देश भ्रमण करता घूम रहा है। सुख और दुख की यातना अब नहीं रही। सिद्धि का गर्व नहीं रहा माँ। केवल शाश्वत सुख चाहता हूँ, ताकि मुझे शान्ति मिले और लोक का अन्धकार दूर करना चाहता हूँ। चाहता हूँ, वह मार्ग ढूँढ़ सकूँ जिस पर चल कर संसार का कल्याण हो सके। भोट देश गया था, वहाँ से अनादर पाकर लौट आया हूँ।'

'कहाँ जाओगे जोगी।'

'माँ! योगी को क्या है? अपना क्या है? पर्वत शिखर, आगम कान्तार, निर्जन मरु, श्मशान और प्रासाद! घूमता हूँ। शायद गुरु मिल जाये। देख चुका हूँ वैभव की छलना। जीवन और मृत्यु, बीच में यौवन का भ्रम! इसमें शांति कहाँ है आत्मा को! मन की प्रतीति कहाँ है। अस्थिर चंचल चित्त की स्थिरता कहाँ है। पतंजलि ने कहा था न? समझती हो!'

विभोर अवाक्, बड़े बड़े नेत्रों में आँसू की चमकदार बूँदें दिखलाई पड़ीं।

स्त्री नहीं समझती। उसे लग रहा है कि सामने कोई बहुत बड़ी वस्तु है, जो उसके छोटेपन के बाहर ही रहे जाती है। स्त्री की दो भुजाएँ हैं। रूप और यौवन! और जो पुरुष इनकी पहुँच में समा नहीं पाता, वह भी क्या मनुष्य है? अगम्य है न वह! इतने

महान व्यक्ति को स्त्री ने सोचा था अपने पाश में बांध लूँगी ! अब सुन्दरी में जागी अभाव की अनुभूति। स्त्री की लघुता। जो स्त्री के महत्त्व को दंभहीनता से अस्वीकार कर देता है, पता नहीं स्त्री क्यों उसे महान समझती है। संभवत: वह जानती है कि वह पुरुष पर कितना प्रभाव रखती है।

और ऐसे पुरुष को उसने साधना से च्युत करना चाहा।

ग्लानि हुई। ग्लानि का अंत है ममता। स्त्री के रूप अपने आप में एक चक्र से घूमते हैं। ममता में बड़प्पन है मातृत्व का। कहा : 'जोगी ! तुम्हें गुरु मिलेगा। तुम हिमालय की ओर जाओ, वहाँ बड़े बड़े तपस्वी रहते हैं। ऐसा मैंने सुना है।'

'जो आज्ञा माता !'

योगी ने सिर झुकाया और चल पड़ा।

फिर धरती कितनी बड़ी ? एक पग में आए जितनी।

आकाश का शून्य कितना बड़ा। मन में एक हो जाए जितना।

यौवन कितना ? जितना श्वास।

जीवन कितना ? जितना संयम।

और मृत्यु ?

उसी के लिये तो गुरु चाहिये !

जोगी का गीत गूँजने लगा—

थान दे गोरीए गोरख बाला
माई बिन प्याले प्याला···
गिनांन ची डाल्हीला पालंघू
गोरख बाला पौढ़िला····

हे गोरी ! गोरख बाल के लिये जगह छोड़ो। उसने बिन प्याले का प्याला पिया है। ज्ञान की पालकी डाली है। देवलोक की अप्सराओं, मृत्युलोक की स्त्रियों और पाताल लोक की नागकन्याओं के लिये गोरख बालक को प्रभावित कर लेना बहुत भारी काम है। उसने माया को

मार दिया है, घर बार छोड़ दिया है, कुटुम्ब और भाई-बंधु त्याग दिये हैं।

स्त्री ने सुना!

स्वर धीरे-धीरे गाँव से दूर चला गया।

जोगी चला गया था।

[२]

अनंगवज्र स्नान करके सरोवर से बाहर निकला। गंभीर स्वर से किसी ने पुकारा : 'गोरख!'

'आदेश! गुरुदेव!'

अनेक वर्ष व्यतीत हो गये थे। नेपाल की पथरीली भूमि में योगी अनंगवज्र को गुरु मिल गया था। गुरु का नाम था मत्स्येन्द्रनाथ। वे जाति के ब्राह्मण थे। उनका नाम था विष्णुशर्मा। बारणा देश उनकी जन्मभूमि थी। उनका चर्य्यानाम था श्री गौडीशदेव, पूजानाम था श्री पिप्पलीशदेव और गुप्तनाम था भैरवानन्दनाथ। उन्होंने समय समय पर अनेक सिद्धियाँ दिखाई थीं। उनके दिखाने से पहले उनका नाम वीरानन्दनाथ पड़ा, फिर इंद्रानन्ददेव और अंत में जब मर्कट नदी में बैठ कर उन्होंने समस्त मत्स्यों को कर्षित किया तो उनका नाम मत्स्येन्द्रनाथ के रूप में दूर दूर तक फैल गया। वे श्री ललिताभैरवी अम्बा पापू शक्ति के उपासक थे। उनके गुरुभाई जालंधरनाथ भी प्रसिद्ध व्यक्ति थे, जिनका शिष्य कराहपा अब ख्याति प्राप्त करने लगा था। मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप के चंद्रद्वीप में पहली सिद्धि प्राप्त की थी और अब नेपाल में वे अत्यन्त ही सम्मानित थे।

जब अनंगवज्र को उन्होंने देखा पहली ही दृष्टि में वे उसके भीतर

छिपी शक्ति को पहचान गए। उन्होंने देखा कि शिष्य होने के योग्य यह तरुण अवश्य ही नाथ मार्ग को प्रशस्त करेगा। वे सिद्धामृत कौल थे। उन्होंने देखा कि अनंगवज्र साधना की एक ऊंची सीढ़ी तक जा पहुँचा है, जिसके मार्ग नहीं पा रहा है तो उन्होंने उसे दीक्षा दी। जिह्वा अर्थात् गो को जो पलट कर अमृतत्व के मार्ग में आ गया था, इन्द्रिय अर्थात् गो पर जिसका अधिकार था, उसे उन्होंने गोरक्षा का नाम दिया और स्वयं आदिनाथ महादेव का सा रूप अपनी भाँति उसे भी धारण कराया। अनंगवज्र अब गोरक्षनाथ हुआ। उसने मेखला, शृंगी, सेली, गूदरी, खप्पर, कर्णमुद्रा, बघंबर, झोली आदि चिह्न धारण किये। अपने विशाल कुण्डलों के कारण वह बड़ा ही प्रभावशाली दिखाई देने लगा। धंधारी उसके पास रहती, जिसे उसने स्वयं बनाया था। अधारी, सोटा, धारण करके शरीर में भस्म लगा कर गुफा में रहने वाला गोरखनाथ अपनी अखण्ड साधना में लग गया था।

प्राचीन कौल साधकों की परम्परा में मत्स्येन्द्रनाथ का अपना महत्त्व था क्योंकि उन्होंने उसमें अपना योग दिया था।

जिस समय अनंगवज्र व्याकुल सा पहुँचा था, गुरुदेव समाधी में बैठे थे। समाधि खुलने पर देखा एक तरुण बैठा था, जिसने उठ कर दण्डवत किया।

क्षण भर देखा और कहा : 'वत्स ! व्याकुल है ?'

अनंगवज्र ने कहा : 'पथ नहीं सूझता।'

'कारण !'

'वासना, काम !'

'चारों ओर आग लग रही है न ?'

'हाँ देव।'

'तो सिद्धामृत पथ में आ वत्स ! पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का पालन कर। शक्ति इस मार्ग में प्रतिद्वंद्विनी है। उसका संग पूर्णरूप से वर्जित करना होगा। साहस है ?'

'पालन करूँगा गुरुदेव ! यह तंत्र, मंत्र....'

'नहीं वत्स ! इनसे भी परे। और ऊपर उठना होगा।'

'तो क्या लोक का कल्याण इसी में है ?'

'वत्स इसी में पिण्ड का कल्याण है। प्रत्येक व्यक्ति पिण्ड है और पूर्ण है। उसी में ब्रह्माण्ड है। उसकी पूर्णता ही पथ प्रदर्शन करेगी, वही लोक का कल्याण बनेगा।'

'किन्तु गुरुदेव ! चारों ओर अंधकार है। प्रजा अंधविश्वासों में डूब रही है। शाक्त केवल योनिजाल में फँसे पड़े हैं। मैंने देखा है। पश्चिम के मुसलमान हो गए लोग कुछ भी नहीं सोचते, वे आत्म-तत्त्व को नहीं जानते। ऊँच और नीच जाति के भेद से लोक त्रस्त हैं। वेद के भार से ब्राह्मण सबको दबाये दे रहे हैं। राजा प्रजा को भूल कर स्वेच्छाचार और कामवासना में डूबे हुए हैं। सब कुछ जकड़ा हुआ है। और मनुष्य मृत्यु और काम के मुख में पड़ा तड़प रहा है। सौर, गाणपत्य, पाशुपत, वैष्णव, दत्तात्रेय, कापालिक और न जाने कितने कितने संप्रदायों में मनुष्य को मार्ग नही मिल रहा है। यह क्या हो रहा है, देव !'

'वत्स ! साधना कर ! धैर्य रख कर सफलता प्राप्त कर ! इस सब को पवित्र करना होगा। लोक में फिर से मर्यादा स्थापित करनी होगी, आदिनाथ ने इस मार्ग की शिक्षा बहुत पहले दी थी। पता नहीं कब। निरंतर कौल साधकों ने इसे आगे बढ़ाया है और यह साधना अखण्ड चलती रहेगी।'

'गुरुदेव ! आपने लोकों को उबार लिया।'

'वत्स ! तुझे ही मेरा कार्य पूरा करना होगा।'

और इसके उपरान्त साधना का प्रारंभ हो गया !

गुफ़ा के द्वार पर खड़े हुए गोरखनाथ ने सिर झुका कर हाथ जोड़ कर गुरु को प्रणाम किया।

'वत्स !'

'आदेश गुरुदेव !'

मत्स्येन्द्रनाथ गुफ़ा के बाहर आ गये। क्षण भर सुदूर पर्वतमालाओं

को देखते रहे और फिर कहा : 'वत्स ! मैंने तुझे अपना समस्त ज्ञान दिया है। कुल और अकुल का अब तेरे सामने कोई भेद नहीं रहा। समस्त में शक्ति और शिव अविच्छिन्न भाव से विराजमान हैं। सहज में तुझे समरस प्राप्त हो गया है। कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर भी जो द्वैत बना था उसे तू नष्ट कर चुका है। चक्रध्यान की साधना मध्यम अधिकारी के लिये है। जो द्वैत भावना के परे है उसे ध्यान-धारणा और प्राणायाम किसी की भी आवश्यकता नहीं। यही अकुल वीर मार्ग है, जिसमें योगी कौलज्ञान की सीमा से आगे निकल जाता है।

गोरखनाथ ने चरणों का स्पर्श करके कहा : 'आदेश गुरु आदेश !'

'वत्स ! किसी समय मैंने कामरूप में साधना की थी और तभी मैं इधर आ निकला था। उस समय वहाँ घर घर में योगिनी कौलमत फैला हुआ था। बहुत विचार करके मैंने देखा है कि अब समय आ गया है, जब आदिनाथ के उपदेश को लोक में प्रतिष्ठित करना है। अतः मैं कामरूप की ओर जाता हूँ, क्योंकि वहाँ के शक्तिपीठ में नितांत परिष्कार की आवश्यकता है। और मैं चाहता हूँ कि तू पश्चिम की यात्रा करे और नया सन्देश लोगों में फैलाये। लोक में अन्धविश्वास हैं। संसार भूल गया है कि मनुष्य की कितनी शक्ति है, कि, वही परमशिव का रूप है और इसीलिये वह असंख्य यातनाओं में भटक रहा है। दरिद्र, धनी, राजा और प्रजा सब व्याकुल हो रहे हैं। जाति और वंश का मिथ्या गर्व अहंकार को प्रश्रय दे रहा है। पश्चिम के म्लेच्छों के आवागमन से हिन्दू जातियों का गर्व बढ़ रहा है। वत्स ! नया आलोक फैलाना होगा। बौद्धों के अनीश्वरवाद ने साधनाओं को खण्डित कर दिया है।'

गोरखनाथ ने कहा : 'गुरुदेव ! इसी दिन की प्रतीक्षा कर रहा था। यह कुल ही शक्ति है, अकुल ही शिव हैं। उस शिव का कोई कुल नहीं, कोई गोत्र नहीं, वे तो अनादि, अजन्मा और अनन्त हैं।'

'ठीक है वत्स ! उस शिव की जब सृष्टि करने की इच्छा तभी वह शक्ति बनती है। शक्ति से ही सबकुछ जन्म लेत

दोनों अभेद हैं। शक्ति ही इसलिये उपास्य है, क्योंकि शक्ति के बिना शिव भी शव है।'

गोरखनाथ ने कहा : 'गुरुदेव ! फिर मैं आपके दर्शन कहा प्राप्त कर सकूँगा।'

'वत्स ! प्रजा में नया जीवन फैलाना होगा। आज जो इस भूमि में वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार आदि फैले हुए हैं, यह स्मरण रखो कि हमारा कौलाचार इन सब से श्रेष्ठ है, और वही मनुष्य के कल्याण का मार्ग है। वेदचार सबमें निकृष्ट कोटि की उपासना है। उनमें कुछ भी नहीं है। वैष्णवाचार, और दक्षिणाचार भी पशु भाव के साधक के लिये ही उपयुक्त हैं। वामाचार में यदि वासना इतनी न होती तो वीरभाव के साधक को उसमें भी सिद्धांताचार के अङ्क की भाँति अधिक सफलता मिलती। किन्तु कौलाचार सबसे ऊपर है। इसमें कोई नियम नहीं। सर्वोच्च साधक ही इस दशा तक पहुँचते हैं। जिनमें किसी प्रकार का भी भेद वहीं वही कौल है। सिद्धकौलमत लोक के समस्त मार्गों में श्रेष्ठतम है। इसी का संदेश जाकर दिशा दिशा में फैलाओ। तुम्हारे शिष्य लंग और महालंग कहाँ हैं ?'

'गुरुदेव वे भिक्षा लाने गये हैं।'

'तो फिर उनके आने पर उन्हें भी साथ ले लो।'

'आदेश गुरु।'

जिस समय लंग और महालंग भिक्षा प्राप्त करके लौटे उन्होंने देखा कि गोरखनाथ विभोर होकर गा रहे थे—

परब्रह्म रमता राम से चौगान का खेल खेलो। अभिमान में क्यों भूलते हो ? पृथ्वी और आकाश में कोई अन्तर नहीं, यह तो केवल मुक्ति का मैदान है। उस एक में ही अनन्त सृष्टि है, और इस अनन्त में एक वही तो है, उस एक के ही यह अनन्त उपाय हैं। भीतर से जब उस एक से परिचय हो जाता है तब सारी अनन्त सृष्टि उस एक ही में समा जाती है। अनाहत नाद अहरन है, किन्तु विन्दु हथौड़ा है। यह इड़ा

पिंगला तो उसकी धौंकनी हैं। मूलाधार को दबा कर दृढ़ता से बैठो तो आवागमन मिट जायेगा। सहज की जीन है, पवन का घोड़ा है, लय की लगाम बनाओ, चेतन को बनाओ सवार, और सवारी करते हुए गुरु ज्ञान तक पहुँचो। मैंने त्रिभुवन को संधान कर लिया, लक्ष्य कर लिया, छान डाला, पर वह नहीं मिला। तिल की ओट हटी, विधाता ने भाव उत्पन्न किया तो जिसे मैं ढूँढ़ने जा रहा था, वह मैं ही होगया। जब मैं कहता हूँ कि वह है तब कोई विश्वास नहीं करता, यदि वह न होता तो अनन्त सिद्ध क्यों काया को कष्ट देते रहते ; सच तो यह है कि सब साधनों का उद्देश्य हीरे से हीरे को वींधना रहा है।

गुरुदेव जा चुके थे। उनकी कुटी अब सूनी होगई थी। गोरखनाथ ने कहा : 'गुरुदेव स्वयं आदिनाथ हैं लंग! अब शीघ्र ही समस्त लोक में सत्य मार्ग की प्रतिष्ठा होगी। उसे कोई नहीं रोक सकेगा।'

ये शब्द महालंग ने आश्चर्य से सुने। गोरखनाथ ने आकाश की ओर देखकर कहा : 'क्या सचमुच आदिनाथ का मार्ग लोक का पथ बन जायेगा ? यह घृणा संसार से दूर हो सकेगी ? कितना क्षुद्र हो गया है यह मनुष्य कि अपने ही जाल को सर्वोपरि और सर्वशक्तिमान समझता है ?'

लंग ने कहा : 'गुरु प्रवर ! आदेश ?'

'क्या है बालक ?'

'गुरु प्रवर ! आज मुझे फिर वही बौद्ध मिला था।'

'क्या कहा उसने ?'

'उसने कहा—तुम्हारे गोरखनाथ साधना में च्युत हो गये, इसीलिये अनंगवज्र न रह कर मत बदल गये। स्वयं मत्स्येन्द्र और जालंधर एक ही गुरु के शिष्य थे जो बौद्ध वज्रयानी थे। मत्स्येन्द्र कौल सिद्धामृत पथ के अनुयायी हुए, जालंधरनाथ कापालिक मत में चले गये, फिर भी वे तो बौद्ध साधना से इतनी दूर नहीं गये। तुम क्यों इस गोरख के चक्कर में फँस रहे हो ?'

'हाँ लंग यह सत्य है। जालंधरनाथ पूर्व में निवास करते हैं जहाँ

ब्राह्मणों का अतिचार अधिक है। किंतु भैरवी चक्र में अब ब्राह्मण भी प्रवेश करते हैं। यह क्या मूर्खता नहीं कि केवल उसी समय वर्ण भेद मिटता है, बाद में फिर प्रारंभ होजाता है? वर्ण का भेद झूँठा है। बौद्ध सिद्धों ने अनेक महामुद्राओं की जाति अपनाली, किंतु फिर भी क्या वे इस विभेद को मिटा सके? केवल योग-मार्ग ही इस बंधन को हटा कर समस्त मनुष्यों के जालों को तोड़ सकता है।'

'तो क्या सब बाह्याचार बदल जायेगा?'

'बदलेगा वत्स! बौद्ध धर्म ही कितना बदल गया है? ब्राह्मण पुराणों के देवताओं के साथ बौद्धों के निवृत्तिपरक देवता भी प्रवृत्ति-परक होकर आगये हैं। जीवन की निराशा ने इन सबको भोगपरक बना दिया; क्योंकि वे कहीं भी मुक्ति का मार्ग नहीं देख सके। जिस समय मैंने विज्ञानवाद का अध्ययन किया, मैंने उसमें केवल निषेधात्मकता देखी। यह समस्त संसार वे केवल विज्ञप्तिमात्रता में मानते हैं। आलय विज्ञान के प्रवाह में एक क्षणिक विज्ञान दूसरे को कार्य कारण श्रृंखला से उत्पन्न करता है और वही चित्त है। बोधिसत्वों, पारमिताओं के अपार भ्रम में मैं कोई पथ नहीं देख सका। रसेश्वर, शैव, और समस्त मतों को मैंने देखा, किंतु वे सब विभिन्न पथों पर ले जाने वाले हैं।'

लंग और महालंग बैठ गये। गोरखनाथ ने फिर कहा: 'सारे संप्रदाय अलग अलग हैं परंतु मुझे सबमें साधना पद्धतियाँ एक ही ओर आती दिखाई देरही हैं। वे सब ही बाह्याचार को अधिक महत्त्व देरही हैं। समस्त में मूलत: अद्वय की साधना का प्रयत्न है। बौद्ध भी तो प्रज्ञा और उपाय का एकात्म करते हैं। परंतु सब पर छागई है मिथुन परक व्यभिचार की जुगुप्सा। भग एक राक्षसी की भाँति बिना दाँत के ही सब कुछ खाये जारही है। मैंने पतंजलि को पढ़ा है। परंतु पतंजलि का योग एक बहुत विशाल परंपरा से कुछ हटा सा लगता है। मेरी बड़ी इच्छा है कि यह बिखरे हुए पंथ एक हों और इस्लाम के अनुयायी जो आरहे हैं वे भी हमारे मार्ग को पकड़ें। इससे न ब्राह्मणों का दंभ रहेगा,

न जातिघृणा रहेगी, न अत्याचार होंगे, प्रत्येक व्यक्ति में शिव जागेगा। स्त्री का मातृत्व पुनः स्थापित होगा।'

महालिंग ने कहा : किंतु गुरुदेव ! स्त्री यदि कामिनी नहीं होगी तो मातृत्व तक पहुँचेगी कैसे ? क्या शक्ति ही अपने विभिन्न रूपों में अपने विभिन्न कार्य नही करती ?'

'ठीक कहते हो वत्स ! लोक में सब तो योगी नहीं हो जायेंगे। जो साधक होंगे वे योगी होंगे। योगी ही लोक का पथ प्रदर्शन कर सकता है, क्योंकि वह परमशिव से तादात्म्य प्राप्त करके, उच्चावस्था को प्राप्त करके सम दशा में आजाता है। योगी केवल आत्मसाधन को सिद्धिमात्र में सीमित नहीं करता, वह लोक को भी जाग्रत करता है। वैष्णवों के अवतार कल्पना हैं, महायानियों के करुणाचित्त बोधिसत्व भी कल्पना हैं, आदिनाथ के उपासक योगी सत्य हैं। गृहस्थ गृहस्थ रहेगा, वहीं से योगी की प्रतिष्ठा होगी, किंतु गृहस्थ यदि साधना के उच्चस्तर पर नहीं पहुँच सकता, तो क्या वह अंधविश्वासों से भी नहीं उबर सकता, क्या उसे मोहबद्ध रहना ही होगा ? क्या उसे भी चेतना के एक विशेष स्तर तक नहीं लाया जा सकता। इन समस्त बौद्ध संप्रदायों में जाति-पांति वर्ण के विरुद्ध सशक्त स्वर है, परंतु स्थविरवाद में पहले स्त्री का स्थान नहीं था, उसके आने से लोकपरक यह नैरात्म्य धर्म व्यक्तिपरक होकर वामाचार में डूब गया है। कुण्डलिनी को जगा कर वे सहस्रार तक पहुँचाते हैं, वे उसे कमल कुलिश कहते हैं, किंतु साधना की तो यह निचली मंजिल है ! देह का महत्त्व परमशिव का महत्त्व है। उसे असुरपद्धति में अपने आप में पूर्ण नहीं समझना चाहिये। योग को मिथुन साधना का पर्य्याय बना कर वे मूलतः विषयों में ही फँस गये हैं। इन विभिन्न देवताओं के लिये जो यह समस्त संप्रदाय लड़ रहे हैं, वे परमशिव को तो उसमें भुला ही देते हैं। देवताओं का स्थान तो नीचा है। ब्राह्मणों का दंभ वास्तव में सबसे बड़ा रोड़ा है जिससे लोक पिस रहा है। सिद्धियाँ प्राप्त करके रसेश्वर, कापालिक, शास्त्र, वज्रयानी, जीवन काल को ही सब कुछ समझते हैं।'

महालंग ने सिर हिलाया और गुरु की ओर तन्मय दृष्टि से देखा।

'चीनागम' गोरखनाथ ने फिर कहा—'वासना का उपदेश है। वे कहते हैं कि वज्रोपासना अनादि काल से चली आई है। यक्षोपासना में उसका प्रादुर्भाव हुआ। किंतु उसका अंत कहाँ है? मैं वज्रयान के भीतर रह चुका हूँ। जानता हूँ इसने लोक को कितना घृणित उपदेश दिया है। इसका विद्रोह केवल ब्राह्मण से है, और इसीलिये नीच जातियाँ इसमें आती हैं, परंतु उसका कारण है, इसमें व्यभिचार की स्वतंत्रता। ब्राह्मण ही नहीं महालंग, इस ईश्वरहीनता को भी मिटाना होगा। जो लोक को देवता दिखाकर छल रही है। शून्य को वज्र की संज्ञा देते देते उसे लिंग पर उतार लाये हैं। ब्राह्मण जिस इंद्र को उप-देवता मानते हैं बौद्ध उसे शक्रपाणि कह कर वज्र के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं, क्योंकि उनका मूल धर्म ब्राह्मण विरोध था। पाँच ध्यानी बुद्धों के अधिष्ठाता के रूप में वज्रसत्व आया जो प्रज्ञापारमिता रूपी शक्ति को ले बैठा और सदैव संभोग क्रिया में लिप्त युगनद्धावस्था में रहता है।'

गोरख के मुख पर तिरस्कार की भावना आई। कहा: 'शक्ति जगदम्बा है। उसका घृणित रूप योगी और साधक क्यों देखे! लोक और गृहस्थ भी प्रजनन को शिव की सिसृक्षा—सृजन करने की इच्छा समझ कर ग्रहण करे, उसके पीछे इस प्रकार वासना से दीन न हो। यह जो सकल संप्रदाय आज योनि पूजा में डूब गये हैं, वे वर्ण और जाति के विरुद्ध होकर ही। किंतु वेदाचार और वामाचार दो अति हैं, साधक को समरस होना चाहिये। तभी यह क्रियाएँ वामाचार में गुप्त रखी गई थीं। वेदाचार साधना के पक्ष को लेता ही नहीं। इसका महान क्षेत्र है जो पिण्ड में ब्राह्माण्ड समा लेता है। इस सबको शुद्ध करना ही मेरा उद्देश्य है ताकि साधना के निम्न स्तर को आत्मसात् करके हम उच्च स्तर पर उठ सकें। शून्य वज्र कैसे हो सकता है? नकारात्मकता भोगपरक इसी कारण बनी कि संयम का आधार लिप्ति की अति मान ली गई। नैरात्म्य परमशिव का स्थान कैसे ग्रहण कर सकता है।

जो नहीं है वह हुआ कैसे ? हम अहं को निम्न कोटि का मानते हैं, किंतु नैरात्म्य का अहं हमारी भांति परमशिव से एकात्म की चेष्टा नहीं करता।'

गोरखनाथ ने गहन विषय छेड़ा, कहा : 'इसे सहज करे भी तो कोई कैसे ? वे स्कंधभूत आयतन और इंद्रिय मात्र में संसार को बाँधते हैं। उनके परमार्थ और ऐहिक के जंजाल मूलतः विभेदीकरण नहीं जानते हैं। गगन तत्व का भेद वे नहीं जानते। मुक्ति का उनका फल विषयसुख ही है। सिद्धों का सारा कार्य्य चर्चा में समाप्त हो जाता है। चित्त ही उनका संसार है। वे उसे ही बुद्ध और मुक्त मानते हैं। पाशुपत भी चित्त को ही पशु मानते हैं। किंतु शून्य में विहार का तात्पर्य्य क्या है? जब देह ही ब्राह्माण्ड है तब परमशिव के अतिरिक्त गत्य क्या है ? संसार से अलग रह कर गृहस्थ भवभोग करे, वहाँ तक तो ठीक है, किंतु भोगी का ध्येय तो और ऊँचा होना चाहिये।'

लंग और महालंग ध्यान से सुनते रहे। गुरुदेव का एक एक शब्द वे पी रहे थे। गोरखनाथ ने फिर कहा—'चित्त से भव निर्माण होता है अवश्य, परंतु भव तो शक्ति का ही रूप है। मूल तो और भी ऊपर है। वह परमशिव है, निरासंग अव्यक्त। यह संसार भ्रांति तो है, परंतु संसार अपने आप में अंत नहीं है, जैसा कि सिद्ध नहीं मानते। भ्रांति के जिस अंत को वे निर्वाण कहते हैं वह तो साधना की निचली मंजिल है लंग ! उससे ऊपर उठना होगा। नाव, विंदु, शशि, सूर्य्य, कुण्डलिनी से भी ऊपर चित्त का निरोध है। सिद्ध सरहपा ने कहा था कि उसे ही जानो, तो शून्य का तादात्म्य होगा। किंतु शून्य में शिवत्व कहाँ है ? नागार्जुन ने सर्वज्ञान के विनाश को निर्वाण माना था, किंतु अलिप्ति में तो महाज्ञान प्राप्त होता है, जब वह स्वयं शिव बन कर साक्षात् ही ज्ञान बन जाता है।'

आकाश में अनेक पक्षी उड़े जा रहे थे। धरती के आँचल पर उठा हुआ था पर्वत। धूनी जल रही थी और महायोगी गोरखनाथ शिष्यों को समझा रहा था। उसने फिर कहा : 'तथता ही यदि परमार्थ है तो

लोक का प्रवाह केवल चित्त में ही सन्निहित है, ऊपर कोई नहीं ? वह जो परमशिव है वह क्या रहा फिर ? रव-सम त्रिभुवन शून्य निरंजन को वे अभाव ही मानते हैं। उत्पादविहीन, अनादि अनन्त, अद्वय है वह उनका शून्य, परन्तु उसका भाव क्या है ? अव्यक्त और अभिधाहीन को वह मानते ही नहीं, तभी वे परमात्मा से कोई तादात्म्य नहीं कर पाते। प्रेतीत्य समुत्पाद का निषेध क्या नैरात्म्य ही नहीं है ? निर्वाण से ऊपर जो महासुख है, तो निर्वाण भवमुक्ति कहाँ है ? और महासुख किस से तादात्म्य है, कैसी शून्यता है ? सरहपा शून्य को करुणा मानता था, किन्तु करुणा शून्य की किस अभिव्यक्ति का स्वरूप है ? करुणा को भाव सदैव चाहिये। करुणा ने ही प्रज्ञा और उपाय को जन्म दिया है जिसने मिथुन द्वन्द्व में व्यभिचार घुसाया है। लंग ! पिण्ड में क्या नहीं है ? देह में ही लिंग और योनि है। उनके मिलन के महासुख को यह लोग स्त्री की योनि में ढूँढ़ते हैं ? स्त्री की योनि शक्ति का प्रजनन स्वरूप है। तादात्म्य का सुख देह के भीतर है। योगी को तो अपने ही पिण्ड के भीतर संभोग का सुख है। द्वन्द्व बाहर नहीं भीतर है। पंच तथागत वैरोचन आदि अपनी अपनी सिद्धियों में वाह्यमिथुनबद्ध हैं। शिव और शक्ति का मिलन देह के भीतर ही है। वे प्रज्ञा को धर्म, उपाय को बुद्ध और संघ को युगबद्ध मानते हैं। तभी गर्भधातु बज्रधातु ने व्यभिचार को जन्म दिया है। चित्त का वे हनन करते हैं, निरोध नहीं। मन को असन करके वे राग और विराग दोनों को त्याज्य कहते हैं। राग को करुणा मान कर वे वज्रोपमता को ही अंत्य मानते हैं। किन्तु साधना में वे कुरुकुल्ला, और महाकाल के उपासक हैं। मैं इसे श्रेष्ठ नहीं मानता। सरहपा भी देह में ही सबकुछ मानता था परन्तु देह का अंतिम गत्य उसने नहीं समझा था। कक्कोल योग से भी उन्होंने नैरात्म की ही साधना की है।'

गोरखनाथ का स्वर बदल गया और उसने फिर कहा: 'बौद्ध वेदादि का अध्ययन करते हैं, दुराग्रह दोनों ओर है। सरहपा ने कहा था कि वेदान्तियों का सबकुछ वर्णाश्रम धर्म पर आधारित है। किन्तु ब्राह्मण

भेद भी नहीं जानते। वे कर्मकाण्ड में फँसे रहते हैं। परन्तु यह बौद्ध ही क्या करते हैं? ब्राह्मण रंडीमुंडी का सा वेश बनाते हैं तो बौद्ध भी संग्रह करते हैं। योगी के पास संग्रह क्यों हो? योगी निरंतर लोकसेवा और आत्मचिंतन करता घूमता रहे। क्षपणक जैन देह को कष्ट देकर ही समझते हैं कि मुक्ति मिल जाती है। लोकायत और सांख्य मतानुयायी भी मोहग्रस्त हैं। किन्तु मुझे सब सम्प्रदायों में एक वस्तु दिख रही है कि स्त्री घुसी हुई है और व्यभिचार का बोलबाला है। इस सब को शुद्ध करना होगा। स्त्री का साधना में यह रूप निंद्य है। शिव तो असल में बालक रूप है, समस्त राग और लिप्ति से परे है वह! भोट देश में बौद्धों में नरबलि तक प्रचलित है। केवल आडम्बर ही उसका रूप है। मैं भोट देश में रहा हूँ। डाकिनी देवी प्रज्ञा का ही नाम है जो वज्रयानी मानते हैं और वह सब महामुद्रा हैं जो हाकिनी, शाकिनी हैं। देवीशक्ति का विशुद्ध स्वरूप उनमें नहीं है।'

महालिंग ने कहा : गुरुदेव! 'गुरुदेव मत्स्येन्द्रनाथ कहते थे कि जब बुद्ध द्वयाकार विपमित शान्त होते हैं तब वे ही शिव होते हैं। तभी अकनिष्ठ स्वर्ग में विशिष्ट माहेश्वर भवन में बोधिसत्व निवास करते हैं। आदि बुद्ध को तभी काल की संज्ञा दी गई हैं। अवलोकितेश्वर का महेश्वर रूप भी उन्होंने तादात्म्य किया है!'

गोरखनाथ ने कहा : 'गुरुदेव पूज्य हैं। उनकी दृष्टि व्यापक है। मूलतः ये बौद्ध निचले स्तर पर हैं, यदि वे उठें तो शैव ऊंचाई पर पहुँच जायँ। कौल सिद्धान्त को अंशतः बौद्ध मानते हैं, ब्राह्मण नहीं मानते, वैष्णव नहीं मानते। किन्तु सर्वोपरि सत्य हमारा ही है। किन्तु बौद्ध हमसे दूर हैं क्योंकि वे पद्धति मात्र में हमारे साथ हैं, किन्तु वे अनीश्वरवादी हैं अतः वे हम से दूर हैं। और वैष्णव समीप। वेदाचार हम सब से दूर है। गुरुदेव कामरूप गये हैं, शुद्ध करके सबको फटक कर पवित्र करने को। शीघ्र ही कौल सिद्धामृत सम्प्रदाय स्थापित होगा जिसमें सब प्रकार के व्याघात दूर हो जायँगे। कापालिक मत भी श्रेष्ठ है यदि उसमें भी कुछ सुधार हो जाये।'

महालंग ने कहा : 'गुरुदेव ! मैंने सुना है कि कण्हपा ने बौद्ध सांप्रदायिकता के भीतर ही कापालिक पद्धतियों की व्याख्या करके उन्हें अपनाया है ?'

'तभी तो मैं कहता हूँ कि सारी पद्धतियाँ दूर नहीं हैं, जो सम्प्रदाय शुद्ध हो सकते हैं, उन्हें योगमार्ग के ऊपर लाकर एक करना होगा और जो नहीं आयेंगे साथ, वे अवश्य ही निंद्य होकर लोक में जुगुप्सा फैलायेंगे। आत्मपरिष्कार करना ही होगा। धर्म के अनेक शत्रु हैं। एक ओर बौद्ध आडम्बर हैं, दूसरी ओर ब्राह्मण की घृणा, तीसरी ओर इस्लाम का व्यक्ति साधना विरोध, चौथी ओर वामाचार. पाँचवी ओर जैन देह-दुःखवाद और छठी ओर है घोर अन्धविश्वास। इस सबमें योगमार्ग ही एक है जो लोक को सन्तोष दे सकता है। नाथ मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है, जो सहज की सच्ची आस्था रखता है, घृणा के स्थान पर समरस और व्यक्ति के पिण्ड में ब्रह्माण्ड का दर्शन कराता है. विषय और व्यभिचार की जगह ब्रह्मचर्य का पालन कराके साधक को उठाता है, देह को संयम देता है दुःख नहीं. और अन्धविश्वास नष्ट करके परमशिव का दर्शन कराने की सामर्थ्य रखता है। मठों और विहारों के आडम्बर हटाकर राजा प्रजा को समान रूप से देखता है और गृहस्थ जीवन में साधारण व्यक्ति को भी स्त्री का सम्मान सिखाता है और साधना के क्षेत्र में बाहर नहीं, भीतर सुख ढूंढ़ता है। तुम देख रहे हो कि यह अनीश्वरवादी सिद्ध अनाचार की सीमा का अतिक्रमण कर रहे हैं। मैं जब सिंध में था तब अपने मन्दिर के हेरूक की चाँदी की मूर्त्ति ही भिक्षुओं ने बेच दी थी, तब वहाँ के राजा ने उन्हें प्राणदण्ड दिया। अरबों के शासन में प्रजा अत्यन्त त्रस्त थी। इन बौद्धों ने ही ब्राह्मण विद्वेष में म्लेच्छों को बुलाया था। जब उन यवनों का शासन उखाड़ कर फिर क्षत्रिय उठे हैं तो कई बौद्ध यवन हो गये हैं। शुलिक नामक भिक्षु मलेच्छ हो गया और उसने अपना नाम अब भाठर रख लिया है। उसका शिष्य पैखम्भ मक्का गया और अब यवनों को भड़का कर गांधार के पश्चिम के बौद्धों का संहार करता है। योगी न हिन्दू है. न मुसलमान। हम जन्म से हिन्दू हैं, परन्तु

मुसलमान से हमें घृणा नहीं, फिर भी हम उनकी भाँति पैगम्बर के अनुयायी नहीं, परम शिव के साधक हैं। बौद्धों के सहज में कितने कुत्सित अनुष्ठान हैं यह मैं जानता हूँ। परमगुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने बौद्ध तत्त्व को शैव तत्त्व में समन्वित किया है इसी से वे दोनों में आदर पाते हैं, किन्तु समय समीप ही है जब वे नाथ मार्ग में अन्तर्भुक्त इन बौद्ध प्रक्रियाओं की व्याख्या में योग मार्ग प्रदर्शित करेंगे, और मुझे उन्होंने इसी की आज्ञा दी है कि मैं इसी शुद्धि का प्रचलन करूँ, क्योंकि जो बाहर खोजा जा रहा है, वह वास्तव में भूल से बाहर देखा जा रहा है, जो है सो तो भीतर है। इन बौद्ध तांत्रिकों का घोर विरोध करना होगा। परमगुरु ने मुझे इंगित किया है और उन्हीं ने मुझे मार्ग दिखाया है। किन्तु वे वामाचार को निम्न स्तर के साधक के लिये अधिक बुरा नहीं मानते महालंग ! तभी वे उसका स्पष्ट विरोध नहीं करते। इसीलिए बौद्ध तांत्रिक उन्हें बुरा नहीं कहते मुझे कहते हैं। समझ गये न ? किन्तु गुरुदेव समय देख रहे हैं। वे शीघ्र ही इन बौद्धों का स्पष्ट विरोध करेंगे। लोक में गृहस्थ के लिये, शील, संयम और शुद्धता स्थापित करनी है, और साधुओं के पापाचार को दूर करना होगा। इसमें बौद्ध ही नहीं, हमें सभी से लड़ना होगा। जो योगमार्गी शैव शाक्त ही हैं और जो शैवागमवादी योग मार्गी नहीं हैं, इनको फटक कर शैवागमवादी योगमार्ग में लाना होगा। कण्हपा की कापालिक साधना से अनेक बौद्ध नाथपंथ में आ रहे हैं, परन्तु जालंधरनाथ गुरुसम महान होने पर भी अपने मोह को नहीं छोड़ पा रहे हैं और बौद्ध साधनाएँ उन पर अधिक हावी हैं। गुरुदेव ने कहा है कि हलाहल पीकर नीलकंठ होने वाले परमशिव की भाँति योगमार्ग स्थापित करके शुद्धि का प्रसार करने को अनेक उपासना और पद्धतियों को एक स्थल पर लाकर साधु और लोक का कल्याण करना होगा। यही गुरु आज्ञा है, यही परमशिव का आदेश है।'

गोरखनाथ चुप हो गया। लंग और महालंग दोनों स्फुरित से देखते रहे। जीवन का एक नया आदर्श सामने था, जिसकी कल्पना भी नहीं

की थी। उनके सामने जो व्यक्ति बैठा था, वह क्या स्वयं उस सामने के विशाल पर्वत से छोटा था। उन्हें लगा उस सामने के पिण्ड में ब्रह्मांड समाया हुआ था।

गोरखनाथ उठ खड़ा हुआ। स्वस्थ गौर वर्ण पर पार्वत्य पवन सहलाहट लेता मचलने लगा। मुख पर भव्य श्मश्रुजाल था, शीश पर जटाएं। योगिवेश। उसी रूप में लंग और महालंग थे। परन्तु उन्हें लगा कि सामने साक्षात् आदिनाथ खड़े थे।

लंग ने कहा : 'गुरुदेव ! परमगुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने मुझसे एक दिन कहा था कि वत्स ! गोरक्षनाथ संप्रदाय को महान शक्ति देगा, क्योंकि वह प्रखर बुद्धि, मेधावी, ब्रह्मचारी और महान साधक है।'

गोरखनाथ ने श्रद्धा से सिर झुका कर कहा : 'वे स्वयं आदिनाथ के अवतार हैं। उनका प्रत्येक शब्द मुझे जीवन में प्रेरणा देगा। कल ही हम लोग यात्रा पर चलेंगे।'

'गुरुदेव ! किस ओर !'

'पहले पश्चिम। फिर दक्षिण चलेंगे। और तब तक गोदावरी का वह बड़ा मेला भी आजायेगा। उस समय वहाँ चलने से सत्कार्य की वृद्धि होगी क्योंकि वहाँ प्रायः सभी तीर्थों से तथा प्रत्येक प्रत्येक सम्प्रदाय के लोग एकत्र होते हैं।'

वे शब्द हवा पर झूमते हुए दूर तक चले गये। तीनों के हृदय में अपार उत्साह उमड़ रहा था।

योगी चल पड़े। गृहस्थों और साधारणों का ध्यान आकर्षित करने को वे लोग चमत्कार और सिद्धियाँ दिखाते। जिससे वे लोग श्रद्धा से उनकी बात सुनते।

गोरख का स्वर अब गूँजने लगा, जिसे लोक गुनगुनाने लगा—

'मैं बहुत ऊँचे घाट का व्यापारी हूँ। मैने शून्य का पसारा किया है। मेरे वाणिज्य में लेना देना कुछ नहीं। गुरु के वचन ही मेरी मुक्ति का साधन हैं।'

भोग में लोक डूबा है। भोग देह के बाहर मत ढूंढ़ो। वैरागी जोगी

रात दिन भोग करता है पर बाहर नहीं। मैं परम शिव हूँ, मेरी शक्ति मेरे भीतर ही है। वह शक्ति मेरा बंधन नहीं। गगनमण्डल तक वह झूलती है, गगन ही मेरा शिव है जो मेरे शीश में सहस्रार कमल पर स्थित है।'

ब्रह्मचर्य्य का वह संदेश उस समय लोगों को विचित्र सा सुनाई देता क्योंकि सारे सम्प्रदाय भोग में स्त्री भोग करते थे। उस स्वर में जब गोरख स्त्री निंदा करता और लोक को जगाता, तब स्त्रियाँ अपने जननी-पद की प्रतिष्ठा सुनकर गोरख से प्रसन्न होतीं, क्योंकि लोक में साधना के नाम पर युवती से जो व्यभिचार बढ़ गया था, उसमें स्त्री की व्यावहारिक मर्यादा काफ़ी नीचे गिर गई थी। गोरख के प्रति स्त्रियों में बड़ा सम्मान और कौतूहल था। वे उसे भिक्षा देने को टूट पड़तीं। गोरख निन्दा करता था, किन्तु वह निन्दा असल में उद्‌बोधन थी।

स्त्रियाँ भिक्षा देती, तो पहले जहाँ साधक और योगी उनकी जंघाओं में आँखें गड़ाते, वहाँ योगी गोरखनाथ गाता: "यह भोली भाली सूरत बाघनी है। इसी ने जन्म दिया। माता है। इसी ने संसार दिखाया है, पर इसी को लोग गोद में चिपका कर सोते हैं।"

"भोगी लोग सो ही रहे हैं, अब भी नहीं जागे। हे अभागे! यह वास्तविक आनन्द भोग नहीं है। अरे यह तो रोग है।"

"हे माताओ। आओ! भिक्षा घर-घर जाओ! कहो कि हे बालक गोरख पेट भर के भोजन करो। गोरख का पारा झड़ता नहीं। वह अनाहत नाद सुनता है। उसकी इड़ा पिंगला में मेल है। पवनरूपी गुटिका के बल से वह आकाश अर्थात् ब्रह्मरंध्र में रहता है। कैलास जैसा ऊँचा ब्रह्मरंध्र भी उसकी इसी देह, इसी पृथ्वीतल में है। उसने पाताल की स्वामिनी कुण्डलिनी को शून्य अर्थात् ब्रह्मरंध्र तक चढ़ाया है।'

कभी लोगों से निन्दा मिलती। तर्क होते। गोरख कहता: 'हे पंडितो! तुम मुझसे पूछते हो, पर मैं तुम्हें कैसे बताऊँ कि देवता कहाँ रहता है। अपने आपको पहचानो। देवता से तुम अलग नहीं हो।'

इस प्रकार प्रत्यभिज्ञादर्शन के मूलस्वर उसके मुख से फूट निकलते।

फिर वह लोकाडम्बर और अंधविश्वास मिटाने को कहता : 'पत्थर के मंदिर में पत्थर के देवता की तुम प्रतिष्ठा करते हो ? तुम्हारे भीतर स्नेह कैसे जाग सकता है।'

जोगी जब स्नेह की बात करता तो भीड़ें सुनतीं।

'हृदय को पसीजना है, पत्थर को पूजते हुए पत्थर मत बनो। सजीव फूल पत्ते तोड़ कर निर्जीव पत्थर की पूजा करते हो ? इस प्रकार के पाप से क्या तुम संसार में अपने को तार सकते हो ?' फिर वह कहता : 'तीर्थ तीर्थ में स्नान करते हो। बाहर धोने से जल भीतर प्रवेश कर आत्मा को कैसे निर्मल कर सकता है।'

सब यही कहते थे, वैष्णव, जैन, बौद्ध, पाशुपत, सौर, गाणपत्य ! पर सब वामाचार में डूबे थे। गोरख कहता था, पवित्रता से, वह सुना जाने लगा।

लोग वितण्डा करते तो गोरख कहता : 'हे पंडित ? विवाद के लिये विवाद करने से क्या लाभ। योगी केवल बोलता नहीं। करके दिखाता है। वही अवधूत है। जानते हो पत्ते में ब्रह्मा है, कली में विष्णु और फल में रुद्र है। पत्रं पुष्पं फलं चढ़ाकर तीनों का उच्छेद कर देते हो। बताओ तुम किस देवता के भक्त हो !'

इसी प्रकार एक दिन ऐसे ही स्वर पंजाब और सिंध में गुंजाता हुआ योगी दल बढ़ चला। अब गोरख के साथ केवल लंग और महा-लंग नहीं, अनेक साधक और थे। और गोरख गाता—

'अरे परमतत्त्व तक कोई नहीं पहुँच सकता। वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। न वह बस्ती है, न शून्य। वह गगन शिखर का बालक बड़ा रहस्य है। उसका नाम कैसे रख सकते हो ! परन्तु वह तुम्हारे भीतर है। भीतर ही उसे पहँचानो। व्यर्थ भेद भेद करके परस्पर क्यों लड़ते हो।'

'वेदों, शास्त्रों, किताबी धर्मों की किताबों और कुरान में जहाँ का वर्णन नहीं है, योगी वहाँ पहुँचता है। यह सब सीमित ग्रन्थ हैं।'

यह सुनकर पश्चिम से आने वाले मुसलमान फकीर जो इस्लाम के

पहले की बौद्ध और शैव परम्पराओं और अग्नि-पूजक पारसियों की परम्पराओं से अवगत थे, वे इस ओर आकर्षित होते और उनको लगता कि इस्लाम का प्रचार जिस एकेश्वरवाद के नाम पर कट्टरता फैला रहा था, वह मनुष्य की असंख्य सिद्धियों और सामर्थ्यों से अपरिचित था। हिन्दुओं और मुसलमानों की पारस्परिक घृणा के ऊपर यह एक नये मनुष्य की कल्पना थी, जिसमें भीतर की शक्तियों का जागरण था। वह शक्तियाँ जो अभी तक स्त्री की जंघाओं के बीच अपना कल्याण ढूँढ़ती थीं, अब वे स्वच्छ निर्मल हो रही थीं। जिस जीवन में परिवर्त्तन नहीं रहा था, उसमें यह एक नया परिवर्तन था।

और उस छोटी सी धूनी का धुँआ फैलने लगा, और उसकी ज्वाला में अनेक अंध-विश्वास काठ की भाँति आकर भस्मसात् होने लगे। वह गोरख का नया सुपना था। तभी उसने कहा : हँसो, खेलो, मस्त रहो, कभी काम क्रोध न करो, परन्तु कभी भी चित्त की दृढ़ता का परित्याग न करो···· हे जोगी मरो! मरनो मीठा होता है, किंतु वह मौत मरो जिस मौत से मर कर गोरखनाथ ने परमतत्त्व के दर्शन किये हैं·······

[३]

योगियों की धूनी रम गई थी। सागल (स्यालकोट) में नगर के बाहर एक उपवन के पास अनेक चर्चाएँ होतीं। वहाँ नगर से अनेक लोग आते और तरह तरह के चमत्कार देखते। गोरखनाथ का नाम घर-घर लिया जा रहा था।

रात होगई थी। योगी गोरखनाथ जाग रहा था। दूर कहीं कोई गा रहा था।

महालिंग अन्धकार में गुरुदेव को खड़ा देख कर पास आगया।

'गुरुदेव !'

'सुनो वत्स ! वह क्या गा रहा है ?'

वे सुनने लगे।

'हे राजा रसालू तू मेरी विमाता का पुत्र है, पर तू मुझे अपना ही स्वरूप दिखता है, क्योंकि हम दोनों में एक वही व्याप्त है। तू ही इस राज्य को ले जो राजा गज ने बसाया था जब उत्तर में शत्रु ने उसे हटा दिया था। हे राजा रसालू उठ और म्लेच्छ से युद्ध कर, वह दाहर को हरा चुका है, वह सब को जबरन म्लेच्छ बनाना चाहता है।

'मेरे भैया पूरन तू चौरंगीया हुआ। हाय वह मेरी माता यौवन के गर्व में भूली थी। तभी तो तुझ पर, अपनी सौत के बेटे पर, उसने दोष लगाया। धिक्कार है तेरे पिता सालबाहन को जिसने अपने ही पुत्र पूरन की आँखें निकलवा कर हाथ पाँव कटवा कुँए में डलवा दिया।

'हे राजा रसालू ! ईर्ष्या अन्धी होती है, इसी से माता पिता अभिमान में नहीं देख पाये। पर मेरे जोगी गुरु के प्रसाद से बिना आँखों के भी मैं देखता हूँ। माँ युवती थी, पिता की आयु ढल चली थी। माँ ने कहा था कि पूरन—स्त्री भैरवी है, मुद्रा है। वह न माता है, न भगिनी। आ मुझे सुख दे। यह पाप नहीं होगा। पर मैंने कहा था—माता ! पाप के अठहत्तर मुँह हैं। मेरा जोगी गुरु तो कहता है कि बिन्दु को साधे बिना साधना नहीं। माता यह तो पाप है। उन्होंने मेरे हाथ पाँव काटे तो लगा मेरा पाप काट डाला गया। सच्चे गुरु की दया से मुझे तनिक भी कष्ट नहीं हुआ। हे राजा रसालू ! तू प्रजा की सेवा कर, और धर्म में रह। मेरी चिन्ता न कर। योग का पथ मुझसे हाथ पाँव नहीं चाहता। इस चित्त को दबा सकूं यही साधना है। पाप हाथ पाँव से नहीं होता, मन से होता है।'

'हे मेरे भैया पूरन तू चौरंगीया हुआ, तू धन्य हुआ। मेरे मरने पर तो मैं माटी हो जाऊंगा, पर तू मर कर भी अमर हो जायेगा। मेरे भुजबल से मुहम्मद, कासिम का बेटा काँप उठा था, पर तेरे बिना

भुजा के बल से मैं हार कर तुझे सिर झुकाता हूँ।'

'मेरे भैया हे राजा रसालू! माँ को क्षमा करना। वह फिर भी माता है, जननी है। गुरु ने मुझे उबारा।'

गीत थम गया।

'कौन गा रहा है महालंग?'

'सुना है चौरंगीया की शिष्य परम्परा के जोगी हैं।'

'ये वामाचार के विरुद्ध लगते हैं।'

'हाँ गुरुदेव!'

'तब ये आदिनाथ का मार्ग क्यों नहीं ग्रहण करते! उससे इनका कल्याण होगा।'

महालंग ने कहा : 'किन्तु...'

'मेरे पास लाओ इन्हें महालंग! मैं समझाऊँगा इन्हें।'

गीत फिर उठने लगा था। योगी गोरखनाथ धूनी के पास आ बैठे और ध्यानास्थ हो गये।

प्रभात हो गया।

योगी 'अलख निरंजन' पुकारते पथ पर निकल पड़े।

गोरखनाथ ने एक द्वार पर खड़े होकर पुकारा : 'अलख 'निरंजन! मां। भिक्षा दे!'

एक स्त्री बाहर आई।

'क्या है रे!'

'माँ भिक्षा दे!'

'संडा मुसटण्डा घूमता है। कुछ काम क्यों नहीं करता?'

'माँ! मैं संसार की सेवा के लिये घूमता हुँ।'

कई स्त्रियाँ और पुरुष इकट्ठे हो गये।

'किस संसार की सेवा करता है जोगी! तेरी जोगन कहाँ है?'

'मेरी जोगन मेरे भीतर है माँ। बाहर नहीं। शक्ति का आनंददायी स्रोत मेरे भीतर है। बाहर समस्त स्त्रियाँ मेरी माता हैं।'

स्त्री ने कुछ अचकचा कर देखा। कहा, 'ला दे री।'

एक लड़की भिक्षा लाई।

'यह नहीं माँ ?' गोरख ने कहा।

'तो क्या लेगा ?'

'मुझे पेट की चिंता नहीं माता!' गोरख ने कहा : 'पेट का क्या ? जोगी को आपाधापा नहीं देखना चाहिये। वह भिक्षा मैं माँगता नहीं जिसमें मेरा पेट भरे। वह तो कोई दे दे तो भला, नहीं दे तो भला, मुझे तो वह चाहिये, जो शिव का नहीं, शक्ति का है, माता का है।'

भीड़ में कौतूहल जन्मा।

'मुझे चाहिये ब्रह्मचर्य धारण करने वाला तुम्हारा पुत्र, जिससे योगी सम्प्रदाय बढ़े, जिससे पवित्र ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले परम-शिवत्व को प्राप्त होने वाले जोगी लोक का दुख दूर करते हुए, आत्म-साधन करते हुए जगह जगह घूमते फिरें और वामारग का पाप हटाते जायें, हटाते जायें जाति भेद, हटाते जायें प्रजा का दुख। दे सकोगी ! अपना शक्तित्व सार्थक कर सकोगी !'

माता के नयनों में आश्चर्य छा गया।

तरुण पुत्र तत्पर खड़ा था। शायद उसी के कहने से जोगी गोरख-नाथ आया था। पुत्र स्वयं जोगी होना चाहता था, परन्तु गोरखनाथ ने कहा था कि माता से पूछ कर हो। पत्नी से भिक्षा माँग कि माता भीख दे। यदि इतना साहस हो तो जोगी बन। जोगी बनना खेल नहीं है। जोगी बनना गृहस्थी के बोझ से भागना नहीं है, एक बहुत बड़ा उत्तर-दायित्व उठाना है। एक बहुत ही उच्चादर्श का जीवन व्यतीत करना है।

'जोगी ! मेरा एक ही पुत्र है।'

'क्यों माँ ! शक्ति इतनी निर्बल क्यों हुई ? माता के रूप में तो उसे कामिनी से भी बढ़ कर सशक्त होना चाहिये। तेरा पुत्र क्या तू अमर रख सकेगी ! काल सिर पर खड़ा है, जानती है न ? मैं तेरे पुत्र को अपने लिये नहीं माँगता। राजा भी भोगी बने, प्रजा के वीर भी बनें। गृहस्थ उनके उपदेशों पर चले, भोग में रह कर भी उसमें स्वार्थी न

बने, तो परम शिव के लोक में मंगल छा जाये। योगी धूर्त्त है तो ऐसा जो अपने अहं को ठगता है। भिक्षा माँग कर वह भोजन करता है। उसे कोई संताप नहीं होता। अब किससे भिक्षा माँगता है वह! अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर से, उसी में घूम फिर कर। ऐसा है उसका नगर। जोगी ही ऐसा धूर्त्त है जो शिवलोक में संचरण करता है। उसका घर उसका शरीर है, हिंदू राम कहते हैं, मुसलमान खुदा। परंतु योगी का लक्ष्य तो और ऊपर है। उस लक्ष्य के लिए जीने पर यह झगड़े ही समाप्त हो जाते हैं।'

स्त्री की आँखों में आँसू भर आये। पुत्र शायद जाना ही चाहता था। उसी समय उसकी पत्नी उसके सामने आगई।

गोरखनाथ ने फिर कहा: 'माँ! जोगी वह है जो मन की रक्षा करे। देश के बिना भी लोक का निरंतर उपभोग करे। कनक और कामिनी के त्याग से ही निर्भयता प्राप्त होती है। लोक को वे ही पथ दिखा सकते हैं जो साधना करते हैं। आदिनाथ के सेवक ही राजा और प्रजा के अंधकार को दूर कर सकते हैं। भिक्षा जोगी की कामधेनु है, सारा संसार हमारी खेती है। भिक्षा भी हमारी नहीं, गुरु की है। जिनके बड़े बड़े कूल्हे और मोटे मोटे पेट हैं उनको गुरु नहीं मिला।'

कामिनी ने बढ़ कर कहा: 'जोगी! तुम इस तरह घर घर उजाड़ दोगे तो काम कैसे चलेगा।'

'माँ!' गोरख ने कहा: 'बौद्धों में बच्चे दान दिये जाते हैं, खरीदे जाते हैं संघ के लिये। वह पाप है, बच्चे क्या जानें। बहुत से साधू बच्चे चुरा लेजाते हैं ताकि उनके संप्रदाय बने रहें और मठ खड़े रहें, परंतु जोगी अकेला रहता है साधना में! वहाँ तो दो के होते ही समाधि हुई, तीसरे के आते ही खटपट, और चौथे के आते ही होता है विवाद। परंतु मुझे योगि संप्रदाय चाहिये। उन समझदारों, बड़ों का जो लोक के कल्याण के लिये सबकुछ छोड़ कर आयें। इसी से माँगता हूँ। आज माँगता हूँ, कल तुम्हें जोगी चाहिये तो स्वयं दोगी। रखो माँ। इसे रखो! पंडितों के भरम में पड़ी रहो। कहना आसान होता है, किन्तु

उस कहने के अनुसार रहना कठिन । और बिना रहनी के कहना वास्तव में थोथा ही है। तोता पढ़-गुन कर कुछ शब्दों को दुहराता-भर है। ऐसे ही अनुभवहीन पंडित के हाथ में पोथी मात्र रह जाती है। यह कलियुग बुरा है। हृदय में जैसे भाव होते हैं वैसे ही काम भी होते हैं। सचमुच जो लोटे में होगा वही तो टोंटी से बाहर निकलेगा। कोई हमारी निंदा करता है, कोई वंदना करता है, कोई हमसे आशा करता है। किंतु यह तो पूर्णविरक्ति का मार्ग है। यह तो उदास पंथ है।'

गोरखनाथ चुप होगया। शब्द जैसे घर कर गये थे। यह एक नयी याचना थी। किंतु माँ का हृदय काँप उठा। कहा: 'जोगी! कहीं और जिनके एक से अधिक हों उनसे ले जाओ। हमारा पोषण करने को भी तो कोई चाहिये।'

एक दर्शक ने कहा : 'छोड़ो जोगी। चलो मैं तुम्हें अफ़ीम और भाँग खिलाऊँ।'

लोग हँस पड़े। किंतु गोरख ने कहा—'जो अफीम खाकर भाँग फाँकता है, उसमें अक्ल कहाँ से आ सकती है? उससे तो पित्त चढ़ता और वायु उतरती है। जो स्त्री स्वाति जल के लिये चातक की लगन के समान पति से प्रेम नहीं रखती वह स्त्री नहीं। ऐसे ही वैद्य यदि वैद्य हैं तो वह रागी नहीं। रसायिनी जो सोना बनाता है वह भिक्षा नहीं माँगता, और सूर कभी पीठ पर घाव नहीं खाता।'

भीड़ छँट गई। पुत्र भीतर चला गया। पत्नी भी। परंतु माता खड़ी देखती रही। उसने गोरख को जाते देखा और उसके नयनों में न जाने किस अज्ञात ममता से पानी भर आया।

अंतिम बात उसने गोरख की सुनी जो वह किसी से कह रहा था—'सब मनुष्य ज्ञानी नहीं हो सकते, योगी हो सकता है। योगी ही लोक-कल्याण कर सकता है, क्योंकि वह स्वार्थ के परे होता है। वह राजा नहीं कि राज्य के लिये लड़े। वह तो सब को मार्ग दिखाता है। गृहस्थ का ज्ञानी बनना, व्यसनी का ध्यान करना, बूचा का कान दिखाना और वेश्या का मान करना जैसा है वैसा ही योगी का माया में हाथ डालना

है। स्त्री के मर जाने पर जो यती होता है, जो दूसरों के यहाँ भोजन करने के लिये साधु होता है, और धन नष्ट होने पर त्यागी होता है, इन तीनों प्रकारों का व्यक्ति वास्तव में अभागा होता है।'

वह चला गया।

शाक्त जुलाहों और नीच जातियों के लोगों की भीड़ें नगर के बाहर उपवन में अधिक आने लगीं। वहाँ गोरखनाथ के सामने कोई छुआछूत नहीं थी। जो लोग लाते थे उससे गरीबों का भण्डारा होता था।

'योगी खाले और उसे संग्रह नहीं चाहिये।'

इस विषय में गोरखनाथ को शंकराचार्य्य द्वारा स्थापित ब्रह्मचारियों के मठ पसंद थे। उसे बौद्धों के विलासी विहार बिल्कुल पसंद नहीं थे। वह उन्हें व्यभिचार का अड्डा मानता था।

निस्संदेह भारत-भूमि में यह एक नया प्रयास था। यह एक नया स्वप्न था! तभी गोरख कहता था—'जो तप करता है, संयम को सार-वस्तु समझता है, बाल्यावस्था में ही जिसने काम को जला दिया है, वही जोगी है, और तो सब पेट भराई करते हैं।

साधु वर्ग में सर्वत्र स्त्री घुस गई थी। गोरख का विरोधी स्वर दिन दिन तीव्र होता जा रहा था। अब गोरख का स्वर नगर पर गूँजने लगा था—जो कथनी कहा करता है वह हमसे छोटा है, वेदपाठी उससे भी छोटा है, पर जो रहनी रहता है वह हमसे श्रेष्ठ है।

नगरवासी कहते : 'यह कैसा जोगी है जो अपने को अन्यों की भाँति सर्वोच्च नहीं मानता। इसमें इतनी सिद्धियाँ हैं, परन्तु यह उन पर अभिमान नहीं करता। यह योगियों में कैसा दल बनाना चाहता है? कैसा जागरण चाहता है लोक में। यह राजा प्रजा को समान दृष्टि से देखता है। न यह किसी ग्रन्थ का महत्व मानता है, न जाति-प्रथा में विश्वास करता है। यह कहता है कि जोगी तो अकेला ही सिद्धि के चरम लक्ष्य को पाता है, फिर दल क्यों? दल चाहता है लोक को उपदेश देने।'

इन्हीं दिनों सागल में हलचल मच उठी। रात को पहाड़ी प्रान्तों से विदेशी सैनिक छिप कर नगर और ग्रामों पर टूट पड़ते और लूट कर

स्त्रियों और संपत्ति को उठा ले जाते। वे पश्चिम के म्लेच्छ थे। अरबों की पराजय के बाद ऐसे लुटेरे दल छिपे-छिपे राज्यव्यवस्था बिगाड़ते घूमते थे। वे हिन्दुओं को उजाड़ने में धर्मप्राणता समझते, क्योंकि काफिरों को मारना उनके मुल्ला श्रेष्ठ कर्म समझते थे। हिन्दू शाही राज्य अब विपत्ति से घिरा सा समय व्यतीत कर रहा था। तुर्कों के शासन में ईरान में अनेक विदेशी कबीले एकत्र हो रहे थे। बहुत से मुसलमान अरब और ईरानी जासूसों के रूप में फकीर बन कर भारत में घुसे आ रहे थे और उन्होंने जगह-जगह अपनी दरगाहें बना ली थीं और स्थान-स्थान पर बौद्ध उन्हें ब्राह्मणों के विरुद्ध मिलाते थे।* शाक्त और अवैदिक शैवों का ब्राह्मणों से संघर्ष बढ़ता जा रहा था। पंजाब से लेकर बंगाल तक जुलाहा जातियाँ विद्रोही हो उठी थीं। देश में राज्य उठते थे, गिरते थे। सामन्तों की प्रतिस्पर्धा भयानक होउठी थी। बङ्गाल में पालवंश बौद्धों को ब्राह्मणों के विरुद्ध भड़का रहा था। नालंद और विक्रमशिला तथा सोमनाथ में वामाचार का व्यभिचार बढ़ता चला जा रहा था। ब्राह्मणों में शंकरमतानुयायी जगह जगह ब्रह्मचारियों के अखाड़े बना रहे थे। बौद्ध विहारों में अपार धन एकत्र हो रहा था। प्रतिहार वंश की अवनति हो चुकी थी। राष्ट्रकूटों और पालों की प्रति-स्पर्धा बढ़ रही थी। प्रतिहार के सामन्त चंदेल उच्छृङ्खल हो रहे थे। त्रिपुरी के कल्चुरी कक्कोल का प्रताप बढ़ता जा रहा था। काश्मीर में उत्पलवंश के समय में भयंकर अकाल पड़ रहा था, परन्तु बौद्ध विहारों में संपति भरती जा रही थी। दक्षिण में श्रीपर्वत वाममार्ग का ऐसा केन्द्र बन गया था जहाँ बौद्ध, शैव, जैन सब प्रकार के शाक्त एकत्र होते थे।

ऐसे ही समय सागल काँप उठा और अनेक प्रकार की चर्चाएँ सुनाई देने लगीं।

रात हो गई थी। गोरखनाथ धूनी के सामने बैठे थे। आज चौरंगीया

---

* यह समय मुहम्द गज़नवी के आक्रमण से लगभग ७५ या ८० वर्ष पूर्व है।

का शिष्यवर्ग आया था। गोरखनाथ ने कहा : योगियो ! असाध्य काम को कोई बिरला ही साधता है। सुग्रीव ने बालि को मरा हुआ समझ कर उसकी स्त्री को रख लिया था। इस पर दोनों भाइयों में लड़ाई हुई। ब्रह्मा ने सरस्वती से भोग किया। इन्द्र ने अहल्या को छल कर सहस्र भग पाई। सुर नर गण गंधर्व वह सबमें व्याप्त है। किन्तु चौरंगीया श्रेष्ठ योगी थे। आप योगी हैं। आदिनाथ के मत में आइये। यह योग मार्ग की प्रतिष्ठापना है। बाह्याचार को छोड़कर परमशिव का ज्ञान धारण करिये। अहंकार को तोड़ना चाहिये, सद्गुरु की खोज करनी चाहिये, योग पंथ की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। फिर फिर मानव योनि नहीं मिलती, इसलिये सिद्ध पुरुषों का सत्संग करलो।' धोबी पा जो धोबी था और सिद्ध था उसने ध्यान से सुना और कहा : 'योगी। गोरखनाथ ! आदिनाथ का संदेश हमारे मत से बहुत अलग नहीं। हम आदिनाथ का पथ स्वीकार करते हैं। किन्तु हम में से बहुत से गृहस्थ हैं, वे सब योगी कैसे हो सकते हैं।'

गोरखनाथ ने कहा : 'गृहस्थ गृहस्थ धर्म में रहें परन्तु उपदेश ग्रहण करें। योगमार्ग प्रशस्त हो। जो मध्यम अधिकारी हैं वे औघड़ रहें, जो पूर्ण अधिकारी होंगे उन्हें मैं कुण्डल डाल कर दीक्षा दूँगा। वे प्रतिज्ञा करें कि कभी पथ से विचलित नहीं होंगे।'

इसी समय नगर में कोलाहल सुनाई देने लगा और घोर चीत्कार उठने लगे।

महालङ्ग ने कहा : 'यह कैसा कोलाहल है ?'

धोबीपा ने कहा : 'कुछ नहीं। यह राजा का धर्म है। वह पालन नहीं करता। हम ठहरे योगी। परमात्म के ध्यान के अतिरिक्त क्या करें। यह म्लेच्छ लुटेरे हैं, धन के लोभ से नगर को लूटने आ जाते हैं। तातार, तुर्क और अरब, जाने कौन कौन हैं।'

हठात् गोरखनाथ का हाथ त्रिशूल पर गया और वह उठ खड़ा हुआ। उसका भस्मावृत्त शरीर धूनी की लपट के सामने चमकने लगा। उसने कहा : 'नहीं धोबीपा ! जोगी कायर नहीं होता। शूर होता है।

वह निर्बल पर कभी भी अत्याचार नहीं सह सकता। वह न हिन्दू है, न मुसलमान; किन्तु आत्मतत्व का शोधन करता हुआ वह लोक-रक्षक है, जैसे स्वयं आदिनाथ हैं, परमशिव हैं। वे परमयोगी हैं, परन्तु दीनों के रक्षक हैं। उठो, आओ आततायियों का नाश करें। यह असहिष्णु लुटेरे सिंध में भीषण दमन कर चुके हैं, योगि संप्रदाय लोक की रक्षा करे।'

महालङ्ग ने उस समय शंख फूँका और तब तरुण अपनी शृङ्गियों में हुँकार कर साँसें फूँकने लगे। खड़ खड़ कर उन्नद्ध त्रिशूल उन लोगों के हाथों में चमकने लगे और वे वीर्यवान, ब्रह्मचारी अन्धकार में 'अलख निरंजन' का गर्जन उठाते हुए नगर की ओर बढ़ चले। उस गर्जन को सुन कर नगर में चेतना सी उठने लगी और एक तरुण चिल्लाया : 'अलख निरंजन! जय! योगी गोरखनाथ की जय!'

सारा नगर प्रतिध्वनित होने लगा। योगियों के अकल्पनीय आक्रमण से लुटेरे घिर गये। उनमें मुसलमान तो थोड़े से नेता थे, बाकी उत्तर पश्चिम की बर्बर जातियों के लुटेरे थे, जो केवल लूट के लिये आए थे।* लुटेरों को त्रिशूलों ने काट दिया।

उनके घोड़े योगियों ने हथिया लिये। तरुण योगियों ने घोड़ों पर चढ़ कर शंख फूँके। हर हर करता निनाद उठा और लोगों के भीम जय-जयकार पर उठता चला गया। गोरखनाथ ने पुकारा : 'जय! गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की जय! योगमार्ग की जय! आदिनाथ की जय!'

सुपना सच होने लगा।

वही स्त्री सामने आई और उसने कहा : 'पुत्र! मेरे योगी पुत्र! गोरख!'

'माँ! जगज्जननी!' योगी गोरख ने पुकारा : 'भीख दो! लोक के लिये पुत्र दो। योगियों का पवित्र सम्प्रदाय इस देश में खड़ा हो, जिससे सारी पृथ्वी का अनाचार दूर हो। दोगी माँ!'

'दूँगी!' उस समय युवक की पत्नी का स्वर गूँज उठा।

---

* ऐसी ही सेना महमूद ग़जनवी लाया था।

योगी गोरख ने उतर कर युवती को प्रणाम करके कहा : माता पार्वती ! दे कार्त्तिकेय को दे। लोक में असुर धर्म बढ़ गया है। उसका नाश करने को दे।'

धोबी-पा ने कहा : 'आदिनाथ की जय ! बोलो ! गुरु गोरक्षनाथ की जय !'

जय-जयकार फिर प्रतिध्वनित होने लगा।

गोरख ने नींव रखी।*

योगमार्ग खुल गया। छोटे छोटे योगिसंप्रदाय आकर गोरखनाथ के झण्डे के नीचे एकत्र होने लगे। उनमें बहुतेरे मुसलमान भी थे। गोरख के पन्थ में सबके लिये स्थान था। परन्तु वह आततायी के विरुद्ध था, उसके विरुद्ध था जो अपनी निरंकुशता से दूसरों को कुचलना चाहता था। गोरख के संदेश से प्रजा में नया आवेश जागने लगा। विभिन्न जातियाँ आने लगीं। वर्णधर्म के विरुद्ध प्रचार बढ़ चला। जोग जागा! अलख का नाद उठने लगा।

रात को भस्म रमाये योगी घोड़ों पर चढ़कर स्फुरित त्रिशूल उठाये प्रजा की रक्षा को फेरी देते। लुटेरे भाग गये। धूनी की लपटें और धधकने लगी। भेंट आती उससे दीन दरिद्रों का भण्डार बढ़ता चला गया। न वहाँ साधुओं को नशा मिलता, न संग्रह, न संचय। वहाँ न महामुद्रा थी, न भैरवी। साधु दल एक स्वर से नारी को देखकर कहता जगज्जननी ! माता !

मानों हवा ही बदल गई थी। वाममार्ग की रीढ़ टूट रही थी। प्रजा में नया विश्वास उठ रहा था। किन्तु ब्राह्मणवर्ण आतंकित सा देख रहा था। यह एक साक्षात् विप्लव था। योगियों की साधना का

---

* इन्हीं गोरखनाथी जोगियों ने अलाउद्दीन से भयानक संघर्ष किया था और नागा बाबाओं के रूप में इनकी एक शाखा बहुत दिनों तक प्रजा के लिये लड़ती रही। युग युग में इनका रूप बदलता गया, जिस पर मैंने अन्यत्र प्रकाश डाला है।

रूप ही बदल गया था। कुछ उदात्त कुछ पवित्र आ गया था अब। नंगी जाँघों से घोड़ों की पीठों को दबा कर जब योगी उन्हें दौड़ाते तो वह दृश्य अनुपम सा प्रतीत होता। हिनहिनाते घोड़ों के सुमों से उठती धूलि के ऊपर धूनी का धुँआ फैलता दिखाई देता और धीरे-धीरे वह गांव-गाँव पर फैलने लगा। पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान, अफ़गानिस्तान और सीमा-प्रांत पर अलख अलख की पुकार शृङ्गीनि नादों के साथ प्रतिध्वनित होने लगी। यह एक बाढ़ थी, जिसने पराजित और कामुक हृदयों में नयी चेतना जगा दी थी।

उन्हीं दिनों संवाद आया कि सिंध में एक पीर ने लोगों को आतंकित कर रखा है। कहा जाता था कि वह पहले बौद्ध जोगी था जो मुसलमान हो गया था। उसने शिष्यों का दल संगठित कर लिया था जो घोड़ों पर सवार रहते थे। और बरबस वह अपने दल के लिये लोगों से भोजन वसूल करता था, नहीं देने पर दण्ड देता था। उसने कुछ सिद्धियाँ भी हासिल करली थीं। उसने प्रजा को उत्पीड़ित कर रखा था।

गोरखनाथ ने सुना तो कहा : 'जोगी होकर बल प्रयोग करता है ? यह तो उचित नहीं।'

'किन्तु गुरुदेव !' धोबीपा ने कहा—'उसने जोगियों की सेना खड़ी करली है। मुसलमान हो जाने के कारण उसे म्लेच्छ काफ़ी सहायता देते हैं। वह हिन्दू था तब नीच जातियों में माना जाता था, इसी से उसको इतनी प्रतिहिंसा है।'

गोरखनाथ ने क्षण भर सोचकर कहा: 'योगी घोड़ा चूली कहाँ हैं ?'

'वे आते हैं।'

जब घोड़ा चूली आया तो गोरख ने कहा : 'योगी ! योगी ही प्रजा को कष्ट दे रहा है। शिव प्रवर्त्तित योगिसंप्रदायों में से यह जो इस्लाम ग्रहण कर रहे हैं इनका यह कार्य क्या स्तुत्य है ?'

घोड़ाचूली ने कहा : 'नहीं योगी।'

गोरख ने कहा : 'भवाग्नि तृष्णा से बढ़ती है। योगी का सबसे बड़ा

गुण सन्तोष है। क्षमा है। सिद्धि इसलिए नहीं है कि वह लोक में अत्याचार करे। वह तो आसुरीवृत्ति है। और फिर यह तो योगि सम्प्रदाय के लिए बड़ी लज्जा का विषय है। ब्राह्मणों से विद्वेष निकालने के लिए क्या योगी शस्त्र ग्रहण करेगा? योगी का आत्मबल क्या होगा? आदिनाथ के उपदेश क्या सारहीन हैं। राज्याश्रम बौद्ध तांत्रिकों को चाहिये न कि योगी को। प्रजा भिक्षा दे तो योगी ग्रहण करे। न दे तो योगी क्या डाकू का सा आचरण करेगा?'

दूसरे दिन ही योगी चले गए। कई दिन बाद सुनाई दिया कि योगी गोरखनाथ के प्रभाव से वह पीर परिवर्त्तित हो गया और उसने प्रतिहिंसा का परित्याग करके लूटना बन्द कर दिया और उत्तर पश्चिम के मुसलमान जोगियों में यह प्रवाद फैल चला कि गोरखनाथ ही मुहम्मद पैगंबर के गुरु थे। किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक योगिसम्प्रदायों में गोरखनाथ का नाम पूज्य हो गया। वाममार्ग की शृङ्खला टूटने लगी। और वे शैव और वे योगमार्गी जो वेदमार्गी नहीं थे, गोरखनाथ को गुरु मानने लगे। अनेक बौद्ध तांत्रिकों में भी खलबली मच गई और वे गुरु गोरखनाथ की ओर झुकने लगे, क्योंकि गोरखनाथ कहता था—भेदों को छोड़ो, योगमार्ग की ओर आओ और स्त्री की साधना का त्याग करो। ब्रह्मचर्य धारण करो। लोक के कल्याण को उठो। आडम्बर, जातिघृणा को छोड़ो। शिव और शक्ति को पहचानो और परम शिव की सत्ता में विश्वास करो। इतना प्रशस्त था यह पथ कि इस पर चलने के लिये विभिन्न विचारधारा वाले योगियों और अन्य मार्गियों को अधिक बदलने की आवश्यकता नहीं थी।

जिस मार्ग से गोरख जाता उधर भीड़ें दर्शन के लिये टूटने लगतीं। धीरे-धीरे गोरख का नाम राजाओं के कान में भी पड़ने लगा। प्रसिद्ध हो चला था कि नाथमत के चार प्रचारक इस समय चार महायोगी हैं। उत्तर में मत्स्येन्द्रनाथ हैं, पश्चिम में गोरखनाथ है, दक्षिण में कण्हपा है और पूर्व में जालंधरनाथ।

इसी प्रकार अनेक दिवस व्यतीत हो गए।

एक दिन गोरखनाथ ने पुकारा : 'वत्स महालङ्ग ! आदिनाथ का सन्देश लोक में फैल रहा है।'

'हाँ गुरुदेव !'

'तो अब किधर चलने की आज्ञा है, गुरुदेव !' लंग ने पूछा।

'गोदावरी के मेले का स्मरण है?'

'हाँ गुरुदेव !'

'फिर कल प्रयाण करेंगे।'

'आदेश !'

'अलख निरंजन !'

महालङ्ग जब सोया तो थका हुआ था। नींद से अचानक ही चौंक कर उठ बैठा।

'क्या है वत्स !'

'गुरुदेव जाग रहे हैं।'

'हाँ वत्स अभी धूनी जल रही है। कैसे जाग उठा।'

'गुरुदेव ! नहीं जानता। स्वप्न वह नहीं था, परन्तु कुछ बेचैनी सी हुई।'

'माया तो न थी ?'

'नहीं गुरुदेव ! वासना नहीं थी।'

'तो फिर?'

शिष्य नहीं बोला।

'परम शिव का ध्यान कर वत्स ! शक्ति के अनेक छल हैं।'

रात गहरा गई और गोरखनाथ ने कहा : 'वत्स ! जब मन निर्बलता का अनुभव करे तब इस धूनी को धधकाया कर ! यही योगी जीवन का एक प्रतीक है। कायायोग को समझना चाहता है न ? देख इसे देख !'

[४]

सिंहल की राजकुमारी सामदेई अनिंद्य सुंदरी थी। उसका मोहित सा सौंदर्य्य देख कर राजान्तःपुर में एक हल्की सी सिहरन दौड़ गई थी। भर्तृहरि उसका पति था—उज्जयिनी का राजा, इंद्रसेन का पौत्र, चंद्रसेन का पुत्र। भर्तृहरि स्वयं पंडित था और जब वह खड्ग उठाता था तब शत्रुओं के हृदय काँपने लगते थे। जब सामदेई उसकी ओर देखती तब राजा भर्तृहरि विभोर होकर कहता: 'देवी! हिमालय के पादस्थ सिंहल में विधाता ने जब लोक का सारा सौंदर्य्य एकत्र किया तब तुम्हारी देहयष्टि सामने आई।'

लज्जा से चपल हुई सामदेई दूध से धोयी सी, बंकिम नयनों से देखती और तब लगता कि अनंतकाल से रति इसी प्रकार अपनी भुवन-मोहिनी छवि फैला रही है।

राजा कहता: 'सामदेई। तुम मेरे लिये अमृत हो। क्या किसी दिन हम तुमको भी वियोग की असह्य ज्वाला का सहन करना होगा? मुझे राज्य, वैभव नहीं चाहिये प्रिये! मैं तुम्हें चाहता हूँ।'

सिंहल की सुंदरी कहती: 'देव! मैं तो ऐसी सुंदरी नहीं हूँ। पुरुष को तो सहस्रबाहु कहा गया है। वह तो चाहे जितनी पत्नियाँ रख सकता है। फिर मुझे आप कितने अधिकार देंगे?'

राजा लज्जित हो जाता। फिर मदिरा की गंध उठती और सुगंधित माँस आते, दीपाधारों पर रत्नों को चकाचौंध करने वाली शिखाएँ जलतीं, जिन्हें आधी रात को सामदेई मुट्ठी भर कर कुंकुम चूर्ण फेंक कर बुझाने का प्रयत्न करती; किंतु राजा की तृष्णा का कहीं अंत ही नहीं होता। वह मानों खेल रहा था। जब इस मृगी से ऊब जाता, तो उसे साथ लेकर वन विहार करता, फिर जब मृगी थक जाती तो स्वयं मृगया को निकल जाता। प्रजा की उसे चिंता नहीं थी।

महाकाल के मंदिर में वाममार्गी पाशुपत एकत्र रहते और चमत्कार

दिखाकर प्रजा को आतंकित करते रहते ।

रात की नीली छाया में जब नक्षत्र झलक आये, वन के तीर पर महालंग ने धूनी जला दी ।

गुरु गोरखनाथ ने कहा : 'वत्स ! यही उज्जयिनी है । बहुत, बहुत प्राचीन नगरी है यह । यहाँ एक भर्तृहरि नामक राजा हुआ था । बहुत विद्वान था । उसने जीवन में भोग और नीति दोनों को देखा और अंत में वैराग्य में ही उसे शांति मिली । सात बार उसने बौद्ध सन्यास लिया, किंतु सातों बार उसने बौद्ध सन्यास और गृहस्थजीवन में कोई भेद नहीं पाया । वहाँ भी स्त्री, यहाँ भी स्त्री । सच्चा विरागी था, अतः जीवन को उसने छलने का यत्न नही किया ।'

'गुरुदेव !' लंग ने कहा—'इस समय भी उज्जयिनी में एक भर्तृहरि नाम का ही राजा है ।'

महालंग ने देखा मुड़कर, फिर धूनी में फूँक मारी ।

गोरखनाथ ने कहा : 'वह जो भर्तृहरि था, उसकी एक रानी थी पिंगला । राजा उसके मोह में था । और उस स्त्री ने दुराचार किया किसी अन्य कोतवाल से संबंध जोड़ कर । राजा को बहुत दुख हुआ जानकर । जब जाना तो उसने वैराग्य ले लिया । कहते हैं वह योगी भी था ।'

गुरुदेव को चुप देख कर वे भी चुप होगये । गोरखनाथ ने फिर कहा : वत्स ! 'राजा भी मनुष्य ही है । उसे कर्मानुसार दूसरों पर शासन करने का अधिकार मिलता है । परंतु योगी जो कर्मजाल काट चुका है, वह किसी के भी आधीन नहीं है । वह राजा को भी प्रजा के प्राणी जैसा देखता है, क्योंकि योगी का स्तर बहुत ऊँचा होता है । योगी किसी भूमि से बद्ध नहीं, किसी का दास नहीं । योगी भिक्षुक नहीं । वह तो सोते हुओं को जगाता है, और पहले जगाता है अपने को । यह जो चारों ओर संघर्ष, युद्ध तृष्णा है, यह किसलिये ? स्वार्थ और लोभ के कारण । किंतु उसका मूल कारण क्या है ? मनुष्य का आत्मतत्त्व का विस्मरण । वह अपना शिवत्व भूल गया है । लोक धर्म में प्रवृत्ति का

तात्पर्य उसने लगाया है कर्म में आसक्ति। जो अनासक्त कर्म करके लोक में रहता है, वही वास्तव में योगी है, उसके लिये किसी बाह्याचार और आडंबर की आवश्यकता नहीं। परंतु जो योगी कि साक्षात् शिव से एकाकार होजाना चाहता है, उसे तो और भी परे होना पड़ेगा।'

'गुरुदेव ! परम गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का पावन नाम प्रकीर्त्तित किया है आपने। अनेक वाममार्गी, बौद्ध, शैव और मुसलमान, वैरागी, और अनेक योगमार्गी आपके उपदेश से अपने विभेदों का परित्याग करके विशुद्ध योगमार्ग के अन्तर्गत आये हैं। प्रजा में आपका पवित्र उपदेश गूँज रहा है। किन्तु एक बात मेरी समझ में नहीं आती।'

'पूछो वत्स !'

'गुरुदेव ! परमगुरु मत्स्येन्द्र की जिस दीक्षा ने आपको इस ओर भेजा, वे और योगी जालंधरनाथ एक ही गुरु के शिष्य थे। पूर्व में जालंधरनाथ और दक्षिण में कण्हपा जिस तत्त्व का उपदेश नाथमत के नाम से दे रहे हैं, वह आपकी बात जैसी पूर्णतया विशुद्ध योगमार्ग नहीं कहती। आदिनाथ का तो एक ही मार्ग है न ? फिर नाथमत के नाम पर इतने मत क्यों प्रचलित हैं ?'

'वत्स सब का प्रारम्भ और अन्त एक ही है। साधन के भेद पद्धतियों में स्वसंवेद्य के कारण हैं। पुरानी परम्परा को भी तो देखो। आदिनाथ के मत को भूलकर न जाने कितने दिनों से यह रीति घुस आई है। आदिनाथ के उपदिष्ट मत में यह जो बाह्याचार है, वास्तव में सब योग परक है। अनधिकारी इसको नहीं समझ लें इसलिये इसे पुराने योगियों ने ऐसी भाषा में लिखा है जो निगुरे साधक को कुछ प्राप्त नहीं करा सकती। अब यह जो लिखा है कि भगिनी, माता से संभोग करो। यह बाह्य अर्थ में नहीं है। असल में अनधिकारियों ने वस्तु को समझा नहीं। अंधविश्वास, टोने टोटके के कारण उन्होंने अर्थ विकृत किया। स्वयं पहले वज्रोली का अर्थ मैं ही गलत समझता था। वज्रोली बाहर नहीं, काया के भीतर है। इन भूलों को साफ़ करना ही योगमार्ग की

स्थापना है। भीतर की मस्ती को न समझ कर योगी मदिरा पीते हैं। यह भ्रम नहीं तो क्या है। नाथमत में भी शुद्धि होगी और यही आदिनाथ की इच्छा है। किन्तु यह लोग भी पहुँचे योगी हैं। उन्होंने साधन का भेद परम्परा से पाया है, परन्तु अन्त वही है। मैं उन्हें भी उचित मार्ग पर चलने का परामर्श दूँगा, ताकि लोक में भी योगमार्ग की प्रतिष्ठापना हो। राजा यदि योगी हो, आत्मतत्त्व का दर्शन कर ले तो वह आदर्श शासन कर सकता है। योगी कुछ भी करे परन्तु वह सबसे अलिप्त रहता है।'

महालंग ने सुना। वन में घोड़े दौड़ रहे थे। हाँका लग रहा था।

'गुरुदेव! कोई शिकार पर निकला है।'

'अंधा ही बाहर शिकार करता है वत्स! असली शिकार करना तो इस देह के भीतर कठिन है। इस छोटे से पिण्ड में कितना बड़ा ब्रह्माण्ड है।'

प्रभात की पहली किरण फूटी। शिप्रा के जल पर उजाले ने झाँका। योगी गोरख ने सुना कोई एक लंबी साँस ले उठा। घने वृक्ष के पीछे जाकर देखा। एक व्यक्ति। बहुमूल्य वस्त्र पहने खड़ा था। हाथ में धनुष और सामने एक बाणबिद्ध छटपटाता हुआ मृग। और सामने गोल बनाये खड़ी कुछ हिरनियाँ, जिनकी बड़ी-बड़ी आँखों से आँसू ढलक रहे थे। अहेरी ग्लानि और व्याकुलता से देख रहा था। मानों हिरनियों के आँसुओं ने उसके मन को बाँध दिया था।

योगी को देखकर उसने प्रणाम किया। योगी ने आशीर्वाद दिया। एक विचित्र भाव उसके मुख पर उजागर हुआ।

हिरनियों ने जैसे प्राण भय छोड़ दिया था और हिरन अभी तक तड़प रहा था।

योगी ने देखा और कहा: 'अहेरी! क्षत्रिय है?'

'हाँ यतिराज!'

'फिर इस निर्बल की हिंसा का लक्ष्य क्यों बनाया!'

अहेरी उत्तर न दे सका। फिर जैसे उसे ध्यान आया। कहा : 'योगी मैं भर्तृहरि, उज्जयिनी का राजा हूँ।' शिकार करना राजाओं का धर्म है, इसीलिये मैंने इसको मारा।

'तो फिर उद्विग्न क्यों है वत्स।'

'मृगियों की कातर दृष्टि मुझे बींध रही है।'

योगी ने मुस्करा कर कहा : 'माया का जाल एक को दूसरे से बांधता है। एक मारता है, दूसरा रोता है और फिर वेदना की कसक से आततायि भी व्याकुल होता है, फिर जन्मजन्मान्तर तक प्रतिहिंसा यों ही चलती चली जाती है।'

योगी बढ़ चला।

राजा भर्तृहरि को लगा वह फिर अकेला रह गया था। उसने पुकारा : 'योगी!'

योगी मुड़ा।

'योगी हो न? सर्वशक्तिमान की साधना की है तुमने! इस मृग को जीवित कर दो योगी! मैं इस वेदना से छूटना चाहता हूँ। यह सारा वैभव! यह सारा सुख!'

'भ्रम है!' योगी ने कहा।

भ्रम!! राजा को लगा वह जड़ीभूत हो गया था।

सच! योगी ने क्या कहा?

क्या मैं भी ऐसे ही मरूँगा!

मेरी सामदेई!

मैं राजा हूँ। फिर भी कुछ नहीं। फिर जीवन में सार्थकता क्या है? क्या यह एक व्यर्थ की हलचल है। कहा : 'योगी! यह सब भ्रम है! तो यह स्वप्न कब तक चलेगा।'

'यह तत्त्वबेल सदैव हरी रहेगी वत्स। संसार एक अग्नि है। उससे मिलकर यह तृष्णा की ज्वाल और बढ़ती है। कुछ कहीं जाता नहीं। यहीं रहता है। जो इसके भीतर से परम शिव रूप को पहँचान कर उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है वही इससे मुक्त हो जाता है।'

'योगी ! मुझे ज्ञान दो, परन्तु मेरी एक याचना है।'

'क्या वत्स !'

'इस हिरन को फिर जिला दो।'

'वत्स ! काल उसे ले गया। तू न मारता तब भी वह मरता। सब कुछ मरता है। योगी की काया भी नष्ट हो जाती है। प्रवाह में सब बदल जाता है। मृगियों को वेदना तब भी होती। अब तेरी वेदना है कि तूने उसे मारा है। आज तुझे इस कार्य का अनौचित्य दिखाई पड़ा है, अचानक करुणा के कारण—अन्यथा जब तक तू लिप्त था, कुछ भी नहीं सोचता था। यह क्यों है ? कैसे है, हम क्या कर रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं, यह सब उसी के लिये है जो सोच रहा है। सोते हुए को या तो स्वप्न है, या फिर कुछ नहीं। मृग मरा नहीं वत्स। देख जीवित है।'

राजा ने आश्चर्य से देखा।

मृगियाँ लौट गई थीं, क्योंकि मृग मर चुका था।

योगी ने फिर कहा—'माटी हो गया न ? अब वह अनन्त क्रम में रूपों में फँसता फिरेगा। दया धर्म का तेरा विनाश हुआ। उससे नैराश्य आया और तू ज्ञान ध्यान खो बैठा। अब इसी से तुझे यम के दरबार का भय लग रहा है न राजा ? ब्रह्म ज्ञान के अतिरिक्त सब कुछ झूँठा है। मरने पर जो बैकुण्ठ और स्वर्ग की प्राप्ति है वह असल में चिन्ता रोहण ही है क्योंकि उससे आवागमन बन्द नहीं होता। मन को कुचल कर मत मार, न उसे खाली रख। अग्नि का भेद जानने का यत्न कर। यह माया आदि से चली आ रही है, बूढ़ी है। पुराण पुरुष की संगिनी है। यही बंधन में डालती है और यही मुक्ति भी देने वाली गुरुकार्य्य को करती है। अविद्या में वह बांधती है, विद्या में उससे मोक्ष मिलता है।

राजा को लगा वह भ्रमित होगया था। उसने वृक्ष से सिर टेक दिया। योगी चला गया।

मध्याह्न हो गया। सामदेई ने शृङ्गार किया और जब वह चित्र-शाला में पहुँची उसने देखा राजा उदास सा बैठा था। उसे आश्चर्य हुआ। वह समझ नहीं पाई।

निकट चली गई। उसे देखकर राजा हठात् उठ खड़ा हुआ। वह कुछ चकित हुई। ऐसे देखा उसने जैसे धरती ने आकाश को। शून्य को देखा हरी भरी वसुन्धरा ने।

राजा अवाक् खड़ा था।

'स्वामी!'

वह चौंक उठा।

'क्या हुआ!'

'देवी!' राजा ने धीरे से कहा : 'यह सब चला जायेगा।'

'कहाँ?'

'काल के मुख में।'

रानी हँस पड़ी।

'हाँ। सदा से यही होता चला आया है।'

'एक दिन तुम भी नहीं रहोगी? मैं भी नहीं रहूँगा?'

'देव! सदैव बने रहने की तृष्णा क्यों हो? समय देह देता है, आयु रूप बदलती है। काल प्रत्येक अवस्था में तरह तरह के रूप देता है और उन रूपों के अनुसार मन बदलता है। फिर उसका विरोध क्यों? जो है उसका सुख क्यों न हो?'

'देवी! सब कुछ दुःख ही तो है। सब दुखी हैं। मैं भी, तुम भी, प्रजा भी, पशु भी, पक्षी भी, वनस्पति भी। यह दुख क्यों है? हम क्यों छटपटा रहे हैं? मैं चाहूँ भी तो क्या लोक का दुख हर सकता हूँ?'

सिंहल की राजकुमारी वज्रयानी करुणाचित्त बोधिसत्व की उपासिका थीं और पंचतथागतों में वैरोचन ध्यानीबुद्ध की पूजा करती थी। कहा : 'दुःख बोधिसत्व हरते हैं राजन्! हम नहीं हर सकते। यह तो योगी और सिद्धों की बातें हैं। हम और आप लोक के प्राणी हैं। इन चिंताओं से हमें क्या लेना देना है।'

'तो क्या देवी! योगी श्रेष्ठ है?'

'सुनती आई हूँ, वही मुक्त होता है। परंतु वह जीवन कठिन है। परंतु फिर भी नहीं जानती कि मुक्ति क्या है? छोटे से जीवन में है ही

क्या ? दुख सदैव है। दुख ही है। जो जहाँ जन्म लेता है वह कर्मफल से। फिर मुक्ति कहाँ है? आत्मा कहाँ है ! जो है अनात्म है। उस अनात्म में जो अद्वयप्राप्त करता है वही सुखी है। लेकिन मैं नहीं जानती। स्त्री हूँ। स्त्री का सुख पुरुष का सुख है।'

राजा ने देखा और कहा : 'किंतु पुरुष का सुख क्या है देवी।'

'राजा का सुख प्रजा की सेवा है देव !'

'किंतु राजा भी तो प्राणी है न ? राज्य तो सदैव नहीं रहेगा ?'

रानी अब आतंकित हुई। भर्राये स्वर से कहा : 'इतना ही जानती हूँ कि जिसका जो धर्म है वह उसी का पालन करे। उसे छोड़ने से भी अनाचार ही फैलता है।'

राजा चुप होगया।

संध्या की गैरिक किरणों ने जब धूनी की लपट को फिर चमक से भरना प्रारंभ किया गोरखनाथ ने देखा कि हतश्री राजा चरणों पर पड़ा था।

'योगिराज ! आया हूँ जीवन को सफल करने। सबकुछ बहा जारहा है। मुझे इसमें शाँति कहाँ मिलेगी !'

'कहीं नहीं।'

'तो इस मनुष्यदेह प्राणी का कोई फल नहीं ?'

'है, किंतु केवल अधिकारी के लिये।'

'मैं अधिकारी नहीं हूँ ?'

'नहीं।'

'क्यों योगिराज।'

'पीड़ा से व्याकुल होकर आने वाला, समय के हाथों घाव पुर जाने पर लौट जायेगा। योगी का मार्ग असाध्य है। वह लोक में सबके लिये नहीं। राजा योगी नहीं हो, राज्य का सुव्यवस्थित पालन करे, किंतु अपने को सर्वश्रेष्ठ समझकर गर्व न करे। प्रजा का कष्ट दूर करे। योगी तो सबकुछ छोड़ देता है। राजा के लिये वही योग श्रेयस्कर है जिसमें वह सम रहे, विलासी न हो, कर्त्तव्यरत रहे, तृष्णा और घृणा से परे

हो, स्वार्थी और परदाररत नहीं हो। सबकुछ करके भी उससे अपने को अलग रखे। इससे अधिक का अधिकारी वही है जो लोक में उपदेश देकर सोई हुई आत्माओं को जगाने निकल पड़े। गृहस्थी के निम्न स्तर से ऊपर उठे, कठोर साधना में जीवन को लगादे और आत्मदर्शन करता रहे। वह मार्ग बहुत कठिन है राजा, वह तेरे लिये नहीं है।'

राजा हतबुद्धि सा बैठा रहा।

'अहङ्कार को ठेस लगने से व्याकुल न हो राजा। योगी का जीवन बहुत कठिन है। उसमें त्याग की छलना नहीं है। उसमें आत्मा को आकाश की भाँति शून्य करना होगा।'

'करूँगा गुरुदेव! मुझे चरणों में स्वीकार करें।'

'तू राजा है वत्स! तूने अन्यों की तुलना में अधिक सुख देखे हैं। कहते हैं उड्डीयान पीठ के ज्वालेन्द्र राजा ने भी बहुत कष्ट पाकर ही योग मार्ग में सफलता पाई थी। कामिनी से मुक्ति पाना तेरे लिए अत्यंत दुष्कर है।'

राजा ने दण्डवत करके कहा : 'गुरुदेव मुझे अग्नि में तपाइए, किंतु इस जीवन को नष्ट होने से बचा लीजिए।'

गोरखनाथ ने सहसा कहा : 'राजा! उठ?'

भर्तृहरि उठा।

'राजा भरथरी!' गोरखनाथ ने कहा : 'यह लो।'

राजा ने देखा और कमण्डलु उठा लिया।

'जा!' योगी ने कहा—'महल के द्वार पर खड़ा होकर अपनी रानियों को माता कह कर भिक्षा माँग ला। यदि तू ले आया तो मैं तुझे दीक्षा दूँगा।'

राजा ने सुना तो आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

कई दिन बीत गए थे। राजा भरथरी ने सचमुच रानियों को माता कह कर भीख माँगी थी, जिसे सुनकर सामदेई मूर्च्छित होकर गिर पड़ी थी। इस घटना के गीत बन गए थे।

राजा सबकुछ छोड़ आया था।

गुरु से दीक्षित राजा कनफटा साधू हो गया, एकान्त में राजा ने योग साधन किया।

सूर्य और चन्द्र का योग करके उसने हठयोग किया। प्राणवायु और अपानवायु का योग उसने प्राणायाम के द्वारा वायु निरोध करके प्राप्त किया। इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ रोक कर उसने सुषुम्णा मार्ग से प्राण वायु को संचारित किया। उसकी नाड़ियाँ शुद्ध होगईं।

गुरु ने कहा: 'मेरुदण्ड जहाँ सीधे जाकर पायु और उपस्थ के मध्य-भाग में लगता है वहाँ एक स्वयंभू लिङ्ग है और वह एक त्रिकोण चक्र में अवस्थित है। वही अग्निचक्र है। इसी में साढ़े तीन वलयों में लपेटा मार कर कुण्डलिनी सोई हुई है। यही शक्ति का व्यष्टिरूप में व्यक्ति रूप है। यही ब्रह्मद्वार का रोध करके सोई हुई है। इसे जगा कर शिव से समरस कराना ही योगी का चरम लक्ष्य है। इसी से मोक्ष का द्वार अनायास ही खुल जाता है। इस शरीर में तीन ही वस्तु हैं जो चंचल हैं। उन पर अधिकार किए बिना साधना नहीं हो सकती। वीर्य, वायु और मन। इनमें से किसी एक को भी वश में करने से बाकी दोनों वश में हो जायँगी। मेरुदण्ड के मूल में सूर्य और चन्द्र के बीच योनि में स्वयंभू लिंग है। वही पश्चिम लिंग है। जहाँ से पुरुषों के शुक्र और स्त्रियों के रज स्खलन का मार्ग है। वीर्य का स्खलन प्रलयकाल और विष-काल है और यही घातक है। सहजानंद में वीर्य नीचे नहीं जाता, ऊपर जाता है। शुद्ध नाड़ियों का होना उसके लिये आवश्यक है। मैंने तुझे धौति, वस्ति, नेति, भाटक, नौलि और कपाल भांति कर्म सिखा दिये हैं। अब तू कुण्डलिनी को ऊर्ध्वमुखी कर।'

राजा फिर अपनी साधना में लग गया।

दूसरे दिन भिक्षा माँगते हुए जब योगी गोरखनाथ नगर में निकले प्रासाद सूना खड़ा हुआ दिखाई दिया। आजकल मंत्री राज्य संभाले था। सामदेई ने वातायान से देखा तो कहा: 'योगी को बुलवाओ।'

प्रजा में अनेक कौतूहल थे। कुछ लोग प्रासाद के प्रांगण में एकत्र होगये।

योगी के आने पर रानी ने खड़ी हुई दासी से कहा : 'पूछ ! महाराज सकुशल तो हैं ?'

योगी ने कहा : 'अच्छे हैं माता ।'

रानी ने व्यंग्य से कहा : 'अब वे अमर होजायेंगे योगी ?'

'नहीं ।' योगी ने कहा : 'अमरता आत्मदर्शन का ही नाम है। काया के बने रहने का नहीं ।'

'फिर योगी !' 'रानी ने कहा—'वह आत्मदर्शन क्या इसी एकांत में है ?'

'नहीं । रानी ! एकांत वह नहीं जिसमें साक्षात्कार है । एकांत तो यह है जहाँ आत्म का विस्मरण है ।'

'तो योगी ! यह मुक्ति पुरुषों की ही है, या स्त्रियों की भी ।'

योगी को क्षण भर रुकते देख कर रानी ने फिर कहा—'स्त्री का कल्याण कहाँ है ?'

'पति-सेवा में ।'

'पति कहाँ है ?'

योगी उत्तर नहीं देसका । फिर कहा : 'सर्वोच्चज्ञान की खोज में है ।'

'फिर स्त्री को भी दीक्षा देंगे योगी ?'

'नहीं ।'

'क्यों ?'

'अधिकारिणी नहीं है ।'

'तो ये योगी जब समाप्त होजायेंगे, तब नये योगी कहाँ से आयेंगे ?'

'लोक में फँसे प्राणियों से जन्म-मरण चलता रहेगा ।'

'तो यह मुक्ति कुछ ही लोगों की है । बोधिसत्व ने तो योगिराज ! लोक-करुणा के लिये निर्वाण भी अस्वीकार कर दिया था । स्त्री ही शक्ति है इसी से तथागत के अनुयायियों ने उसे लता माना है । आप जिस नीरस पथ को बढ़ा रहे हैं, उसमें सर्वज्ञ के थेरवाद से क्या अंतर है ?'

'उसमें अभाव था, यहाँ घनत्व है । वह नकार था, यहाँ दर्शन है ।

वहाँ शून्य था, यहाँ शिव है। वहाँ अनात्म था, यहाँ परमात्म है। रानी! सब तो अधिकारी नहीं हो सकते। उसके लिये इतना दुःख क्यों?'

'दुःख तो अमर है योगी। तुम आत्म परमात्म दर्शन करके भी व्यथित नहीं हो, यह मैं नहीं मान सकती। यह जो योगमार्ग का प्रचार करते फिर रहे हो, वह भी अहं की तृष्णा है, चाहे इस अहं को आदि-नाथ की इच्छा कह कर अपने को धोखा देलो। तुमने साधना की है, साध्य साधन जानते हो। पुरुष तुम्हारे बहकावे में आसकता है क्योंकि उसका आधार ठोस नहीं होता। किंतु वह साधना कभी भी स्त्री की साधना नहीं है जिसमें उसका मातृत्व खंडित हो। प्रकृति ने उसे विधाता बनाया है, इसी से वह कभी भी एकांत में नहीं छली जाती।'

'मुमूर्ष!' योगी ने कहा—'आद्या का नया जाल है! माता! कौन नहीं जानता कि शिव भी शक्ति के बिना शव है। परंतु अपनी परमा-वस्था में वह शिव सबसे परे है। उसी को जानना सबसे ऊपर है। उसे स्त्री नहीं समझ सकती।'

रानी के होठों पर व्यंग्य फिर खेल गया।

धीरे से कहा: 'योगी, परमशिवत्व प्राप्त करना व्यक्ति का ही काम होगा। स्त्री तो लोक का विधाता फिर भी रहेगी। और जिसका सहजरूप अधोमुख गति है, उसे ऊर्ध्वगति करके कैसा ही ब्रह्मानंद तुम प्राप्त करलो किंतु दुःख सत्य ही रहेगा। शाश्वत!'

'माया!' योगी ने हँस कर कहा: 'स्त्री इतना ही सोच सकती है।'

'इतना ही सोचेगी योगी।' रानी ने कहा—'क्योंकि इससे अधिक अधिकारी तुमने उसे माना ही नहीं। जिसका दूध पीकर बड़े हुए हो, उसका मोल क्या चुकाया तुमने? यदि तुम्हारी माता कामिनी न होती, तो तुम्हारी माता कैसे बनती? तुम्हारा समस्त योगमार्ग एक दिन क्या, निकट भविष्य में धूर्तों और व्यभिचारियों का अड्डा बन जायगा, क्योंकि जो गृहस्थधर्म के विमुख है, जिसे केवल ज्ञान और साधना का दंभ है, जो सहज ममता और जीवन के प्रेम को अस्वीकार करके वैयक्तिक मार्ग पकड़ेगा वह अवश्य पतित होगा।'

वृद्ध ब्राह्मण मंत्री ने कहा : 'सत्य है महारानी ! जो वेद का मार्ग, शास्त्रों का मार्ग नहीं देखेगा, वह कभी भी सफल नहीं होगा। आदि-नाथ शिव भी पार्वती से समन्वित हैं।'

योगी गोरखनाथ ने कहा : 'ब्राह्मण वेद का भार ढोते हैं मंत्री। तत्त्व नहीं जानते। लोक का यह दुःख उन्हीं ने बनाया है। मनुष्य से मनुष्य को घृणा सिखाई है और साधना के क्षेत्र में स्त्री के प्रवेश ने ही यह घोर व्यभिचार फैलाया है। अपने स्वार्थ से ऊपर उठ कर देखो। राजा भरथरी पहला त्यागी नहीं है। किंतु विशुद्ध योगमार्ग में प्रवेश करने वाला पहला राजा है। कामाख्या से उद्यान और श्रीपर्वत तक चारों ओर मैं केवल व्यभिचार देख रहा हूँ। ऐसे योगियों की आवश्य-कता है जो लोक के सामने आदर्श स्थापित कर सकें।'

वृद्ध ब्राह्मण ने घृणा से मुख फिरा लिया। रानी ने व्यंग्य से फिर देखा; किंतु कहा केवल : 'योगी को भिक्षा दे दासी ! ज्ञानियों और उप-देशकों के लिये गृहस्थ को ही कर्मजाल में फँस कर उपार्जन करना होगा और उसके लिये गाली भी खानी होंगी।'

रानी हँस दी। दासी काँप उठी। उसे सिद्ध गोरख का आतंक था।

गोरख ने कहा : 'अपने पथ प्रदर्शक के लिये देना होगा माता। योग सर्वोच्च साधना है। दुरूह कष्टकर है। काम का दहन अत्यंत कष्टकर है। तुम्हारा पुत्र साधना की एक ऊँची मंजिल पर पहुँच गया है।'

'मेरा पुत्र !' रानी ने कहा।

'हाँ। भरथरी !'

रानी अवरुद्ध सी भीतर चली गई। योगी लौट आया।

कुछ ही दिन बाद भरथरी छः चक्र, सोलह आधार, दो लक्ष्य, और व्योमपंचक को जान गया। तब गोरखनाथ ने कहा : 'वत्स ! जीव के जन्ममरण का कारण क्या है ? क्यों वह सृष्टि चक्र में पच पच कर मरता है। क्या है इसका रहस्य ? केवल यही कि किसी अनादि काल में शिव और शक्ति क्रमशः स्थूलता की ओर प्रस्फुटित हुए थे—अलग

अलग होने के लिये ।'

"क्यों गुरुदेव !' भरथरी ने पूछा ।

'यही शिव की सिसृक्षा थी ।'

'उस निर्लिप्त में यह सिसृक्षा क्यों हुई गुरुदेव !'

'क्योंकि आद्या उससे एक होकर भी अपने स्वभाव में चंचला थी। और इसीलिये जिस दिन यह दोनों समरस होकर एक हो जायेंगे उसी समय यह सारा दिखाई देने वाला चक्र अपने आप समाप्त होजायेगा। शक्ति ही कुण्डलिनी है और शिव ही सहस्रार में वर्तमान है। जन्म जन्म के इकट्ठे हुए मलों के कारण कुण्डलिनी दबी पड़ी है। वही सृष्टि है। उसके दो रूप हैं। सूक्ष्म और स्थूल। स्थूल कुण्डलिनी के जागने से मुझे सिद्धियाँ मिल गई थीं किंतु उससे परम पद नहीं मिलता। वह तब मिलता है जब परा संवित् ज्ञान रूपिणी वह साक्षात् माहेश्वरी शक्ति—सूक्ष्म कुण्डलिनी जाग उठती है। जब उसका शिव से मिलन होता है, तभी पिण्ड में ब्रह्माण्ड समा जाता है। यह न वेदपाठ से होता है, न ज्ञान से, न वैराग्य से ! केवल गुरु कृपा से ही मुझे यह प्राप्त होसका ।'

'गुरुदेव ! क्या मैं भी उसे पासकूँगा ?'

'वत्स। यत्न कर ! कठिनतर मार्ग है। परंतु प्रयत्न करने पर क्या नहीं होता। हठयोग साधन है जो अंत में चित्त निरोध पर पहुँचता है। उसका निरोध सबसे कठिन है क्योंकि चित्त एक प्रवाह की भाँति बदलता है। ब्रह्मचर्य्य का पालन तुझे सफलता देगा।'

और भरथरी फिर अपनी साधना में लग गया। सामदेई ने सुना कि अब वह योगी होगया था तो कहा : 'सखी ! स्वामी तो योगी होगये, अब मेरे लिये क्या मार्ग है ?'

'देवी ! योगमार्ग तो वर्जित है।'

सामदेई ने कहा : 'कहते हैं कण्हपा सिद्ध भी नाथ मत का अनुयायी है। उसकी दो शिष्या हैं। मेखलापा और कनखलापा। उसने स्त्रियों को शिष्या कैसे बनाया है ?'

'नहीं जानती देवी ! परंतु अभी तक तो यही सुनती आई थी कि भोग से ही योग मिलता है। यह कहता है जोगी गोरख कि भोग से ही भोग मिलता है।'

'यह नहीं जानता। यदि भोग वर्जित होता तो ध्यानी बुद्ध पारमिताएँ क्यों रखते ?'

'देवी ! वह तो कहता है कि सर्वज्ञ* तो स्त्री को छोड़ कर चले गये थे, फिर यह पारमिताएँ कहाँ से आईं ? वह तो कहता है कि लोग अर्थ नहीं समझते। यह सब अनधिकारियों को हटाने के लिये पूर्वजों द्वारा रहस्यमय ढंग से लिखी अध्यात्मपक्ष की बातें हैं जो अज्ञानियों ने व्यवहार पक्ष में उतार ली हैं। क्योंकि मार्ग वही है अतः इन मार्ग से बाह्यसिद्धि तो मिल जाती है, परंतु वास्तविक मुक्ति नहीं मिलती !'

रानी नहीं समझ सकी।

धूनी की उजियारी में महालंग ने कहा : 'गुरुदेव ! अब समय आरहा है।'

'हाँ वत्स ! अब परमगुरु के उपदेशों की परीक्षा का समय है।'

दोनों का तात्पर्य्य था गोदावरी के उस विराट् मेले से, जिसमें भारत भर के ही नहीं, तिब्बत, और बलूचिस्तान, ईरान तक के साधु संप्रदाय एकत्र होते थे और वहाँ अपने अपने मत का प्रचार करते थे। वहाँ बड़े बड़े धर्मगुरु आते थे और परस्पर शास्त्रार्थ होता था। इसी की वर्षों से प्रतीक्षा थी। उसी के लिये नेपाल से चले थे और अब वह समय समीप आगया था। इस यात्रा में निरंतर साधना चलती रही और गोरखनाथ का नाम भी योगमार्ग के साथ साथ फैलता गया। इस समय गोरखनाथ काफी प्रसिद्ध हो चला था।

'आदिनाथ का उपदेश लोक में प्रतिष्ठित होगा।'

'आदेश गुरु आदेश।'

तब लपट काँपने लगी। लगा वह ऊपर चढ़ना चाहती थी। गोरखनाथ ने कहा : 'लंग और काठ डाल।'

* गौतम बुद्ध

शिष्य धूनी की आग को बढ़ाने लगे, और उसका धुँआ और भी ऊपर उठने लगा, फैलने लगा।

[५]

चिर प्रतीक्षित गोदावरी का मेला आ गया है। वहाँ भीड़ें लग गई हैं। काश्मीर के परे पश्चिम में ईरान और पूर्व में तिब्बत तथा बलूचिस्तान से कामरूप और दक्षिण में सेतु तक से साधु समुदाय एकत्र हो गया है। बहुत से राजा भी वहाँ अपने वैभव के साथ साधु दर्शन के लिये आ पधारे हैं। उनके तम्बू गढ़ गये हैं और प्रतिस्पर्धा में वैभव, नारियाँ और न जाने क्या क्या वैभव आ इकट्ठा हुआ है। पाशुपत, लकुलीश, सौभान्तिक, बौद्ध योगाचार मतानुयायी, अवैदिक शैव, वैदिक-शैव, अवैदिक योगि संप्रदाय, ब्राह्मण धर्मानुयायी भागवत, वैष्णव, जैन, वाममार्गी पारसनाथी और नेमिनाथी, वज्रयानी, कालचक्रयानी, शाक्त, कौल, विभिन्न आम्नायों के गुह्य समाजी, देवी पूजक, सौर, गाणपत्य, तांत्रिक, मांत्रिक, यांत्रिक, और दक्षिणाचारी, कापालिक, कालामुख, इत्यादि आ आकर इकट्ठे होने लगे हैं। बड़ा भारी बाजार लग गया है। गाँवों और आसपास के नगरों की भीड़ें आ लगी हैं। जादूगर, तमाशे वाले, खेल दिखाने वाले, नट और ऐसी ही मनोरंजन की सामग्री आगई हैं। धनिकों और वैभवशालियों में अपने-अपने संप्रदाय के गुरुओं को दान देने की होड़ होने लगी है। इस भारत में जो सम्प्रदायों का वन था, वह एक प्रकार से आकर वहाँ एकत्र हो गया है। कहीं वेदान्ती भाषण देते मिलते हैं कहीं षड्दर्शन के आचार्य्य बोलते हैं। परन्तु इन, शास्त्रार्थों में मारपीट नहीं होती। न जाने असहिष्णुता के बावजूद यह सिद्धान्त भारत में कब से मान लिया गया था कि उपासना में सबको

अपने मत को स्थापित करने का अधिकार है। देवताओं की भीड़ देखने योग्य है। इस कदर मूर्त्तियाँ बिकने आई हैं। कहीं पाँचों धमनी बुद्ध हैं तो कहीं पारमिताएँ। कहीं त्रिनयन हेरूक है, तो कहीं हेरूक युगनद्ध है। कुरुकुल्ला, चीनतारा, एकजटा, छिन्नमस्ता आदि कहीं दीखती हैं तो उधर गणेश है, एक मूर्त्ति में वह अपनी शक्ति की योनि पर सूण्ड लगाये है, दूसरी में वह संभोगरत है। काली, महाकाली, दशभुजा, दुर्गा, सरस्वती, महाश्यामा, महाविद्या, माहेश्वरी के पास ही कुबेर, जम्भल, आदि बिक रहे हैं। शिव, विष्णु की तो भरमार है। वराह, नृसिंह, आदि अवतारों की मूर्त्तियों की कमी नहीं। हाकिनी, शाकिनी, डाकिनी भी मौजूद हैं। कपड़ों पर मण्डल बने हैं। वर्णबीज मालाएँ भी हैं जो घरों में टाँग लेने से पाप और विपत्ति दबती है।

मेले में सब से दिलचस्प है भैरवीचक्र का स्थान। बाहर से कुछ नहीं लगता। लेकिन इस समय एक ब्राह्मण ने उसमें प्रवेश किया है। वह जाकर नग्न हो गया है, क्योंकि वहाँ सभी नग्न हैं, पुरुष भी स्त्रियाँ भी। वे जाने किस किस जाति और वर्ण के लोग हैं। ब्राह्मण भी जाकर बैठ गया है। उसे भी मदिरा, मत्स्य, मुद्रा (चना) आदि मिल गये हैं। एक जो शायद पुरोहित है, वह भैरव बना है। उसका बदन सिन्दूर से चर्चित है। वहीं भैरवी है। सिन्दूर रंजित नग्न नारी। वे एक दूसरे के गुप्त स्थानों की पहले पूजा करते हैं, फिर भैरव शराब पीना शुरू करता है। वह एक मन्त्र पढ़कर एक प्याला चढ़ाता है, सब पीते हैं। फिर यही क्रम चलता है। एक-एक कर के प्याले चढ़ते हैं और स्त्री-पुरुषों की मर्यादा टूटती जाती है और वे युगनद्ध होते हैं। पता नहीं कौन किससे लिप्त है। भैरवी और भैरव मस्त हैं। युगनद्ध होकर महासुख लेते हैं पर फिर भी तृप्ति नहीं मिलती। तब मदिरा पीते हैं। एक-एक प्याले में वे एक-एक देवता को पी जाते हैं और जब भैरव ग्यारहवाँ प्याला पीकर मदहोश सा 'शिवोऽहं' (मैं शिव हूँ) कह कर लेट जाता है, तब भैरवी शक्ति के समान उस शव पर चढ़ कर उसे शिव बनाने लगती है। चक्र से बाहर निकल कर सब वर्ण अलग अलग हो जाते हैं।

वेदांतियों का विषय नीरस है। वेदानुयायी ब्राह्मण इन शूद्रों और म्लेच्छ तर्कों से अभिभूत दिखाई देते हैं। कहीं कोई आग पर चल रहा है, कोई कीलें खा रहा है, कहीं लोहे की कीलों के बिस्तर पर कोई नंगा सो रहा है। कपाल वनिताएं स्तन खोले गले में नरमुंड मालाएं धारण कर के हाथ में त्रिशूल लिये घूम रही हैं।

बौद्ध ब्राह्मणों का मज़ाक उड़ाते हैं, फिर कवच बाँट कर लोगों को अपनी ओर झुकाते हैं। इन कवचों के साथ मंत्र भी हैं। कालचक्रयानी सिद्ध विरूपा भी आये हैं। कई मछुए, और जुलाहा आदि निम्न जातियों के भी सिद्ध हैं। उनके नाना रूप हैं। दत्तात्रेय सम्प्रदाय के लोग कभी-कभी पागल से दिखाई देने में पाशुपतों की टक्कर लेते हैं। पाशुपत ने जहाँ स्त्री को देखा वहीं वह अश्लील इङ्गित करने लगता है। नागार्जुन के रसेश्वर संप्रदाय के साधु विचित्र औषधियाँ बेचते हैं, और कई साधु सोना बनाने के लिये लोगों से सोना लेकर चंपत भी होते हैं। साधुओं की रक्षा स्वयं उनके दल करते हैं। कहीं रक्त वर्ण कहीं स्याही जैसे चोले चढ़ाये, कहीं जटाधारी, कहीं कनफटे, और न जाने कितनी तरह के वेश गोदावरी के तीर पर आकर एकत्रित हो गये हैं। सिद्ध चुणकरनाथ ने धूनी लगा दी है।

उसी भीड़ में एक व्यक्ति शांत सा देख रहा है। उसका नाम शान्तिपा है। वह वज्रयानी सिद्ध है। उसने अनेक पुस्तकें लिखी हैं जो तिब्बत के बौद्धों तक मान्य हैं। वह विक्रमशिला का द्वाररक्षक पण्डित है और इतना प्रकाण्ड विद्वान है कि मगध का वह ब्राह्मण अब बौद्धों में 'कलि-काल-सर्वज्ञ' के नाम से विख्यात है। वह अभी नालन्दविहार के पंडितों से मिलकर आया है। मथुरा, पाटलिपुत्र, उद्यान, और समस्त पीठों के पण्डित आकर एक दूसरे से मिलते हैं।

वह शांतिपा देख रहा है कि सामने से भीड़ छँट गई है और दो स्त्रियाँ चली आ रही हैं। वह उन्हें जानता है। वे कनखलापा और मेखलापा नामक स्त्रियाँ कण्हपा सिद्ध की शिष्या हैं, जो जालंधर पथ का अनुयायी है। जालंधर को नाथ मतानुयायी भी माना जाता है। वह

दोनों स्त्रियाँ सिद्धयोगिनी हैं और बड़ी पण्डिता हैं, । दूसरी ओर से भादे आरहा है । वह श्रावस्ती का ब्राह्मण, चित्रकार था जो अचिंतिया की भाँति कण्हपा का शिष्य होगया था । वह धनिरूप देश का लकड़हारा था । मस्त वह इतना था कि उसने जंगल में लकड़ी काटकर रस्सी समझ कर उन्हें एक साँप से बाँध लिया था । कण्हपा भी शबरपा की भांति छिन्नमस्ता के उपासक हैं । वह इस समय विधानगर से आए हुए हैं ।

उडन्तपुरी, सोमपुरी, मालव, सिंहल आदि का पर्याटन करके शांतिपा वेदवेदांग और त्रिपिटक आदि के विष्णात् विद्वान होगये । जब वे बज्रासन बोध गया गये तो बंगाल के पालवंशी राजा महीपाल और उसके सम्बन्धी चाणक्य ने उन्हें विक्रमशिला के एक द्वार का पण्डित नियुक्त कर दिया था । वही शांतिपा चिन्तामग्न सा बढ़ा जा रहा है । वैसे बड़ी सनसनी फैली हुई है, क्योंकि कल ही गोरखनाथ और कण्हपा का शास्त्रार्थ होने वाला है ।

शांतिपा की विह्वलता का कारण कुछ इस प्रकार है ।

हाँ वह योगी गोरखनाथ ही था ।

अनेक वाममार्गियों ने उसे घेर रखा था, परन्तु वे प्रायः ही योगमार्गी थे ।

गोरखनाथ ने कहा : 'शिव द्वारा प्रवर्त्तित सारे योगमार्ग श्रेष्ठ हैं । दत्तात्रेय महान साधक थे । बौद्धों में भी जो संप्रदाय योगमार्गी हैं वे एक ही स्थल पर खड़े हैं ।'

उसके भाषण को सुन कर विभिन्न मतावलंबियों में उत्सुकता जाग गई थी ।

एक ने कहा था : 'परन्तु योगी फिर विभेद किस का है ?'

'अज्ञान का ।'

'स्पष्ट करो । स्पष्ट करो ।'

'योगिमार्ग ही सबका मूल है । अतः वही मूल भूमि है । शेष पद्धति और उपासना वाह्याचार हैं ।'

गोरखनाथ ने कहा था।

'योगी योगी है, न वह ब्राह्मण धर्मानुयायी है न बौद्ध ही।'

'योगी तो अद्वय की साधना करता है।'

'संप्रदाय की प्रतिष्ठा की कामना ही भेदमूलक है। अपने अवलंबित मार्ग की अभिवृद्धि केवल योगक्रियाओं से ही संबंध जोड़ती है।'

'जातिघृणा छोड़ो। कोई जन्म से ऊँच-नीच नहीं होता।'

गोरखनाथ ने कहा था।

'साधू को संचय नहीं चाहिये। मठ, विहार, मंदिर केवल आडंबर हैं। काया ही तीर्थ है, सहज बनो, समरस की ओर बढ़ो।'

गोरख ने कहा था।

और शांतिपा ने देखा था कि असंख्य मतों के लोगों ने जयजयकार किया था।

शिव के अठारह संप्रदायों ने गोरखनाथ को गुरु स्वीकार किया था। गोरखनाथ ने कहा था : 'किन्तु वामा साधना का त्याग आवश्यक है। योगी को भीतर ही सुख प्राप्त करना है।'

उसने देर तक इस विषय को समझाया था। अन्त में बारह संप्रदायों ने स्वीकार किया था। छः तो गोरखनाथ को ही गुरु मान बैठे। छः ने उन्हें मार्ग दर्शकमात्र माना। वे सब नाथमतानुयायी हुए।

यही शांतिपा की चिंतना है। वे वज्रयानियों का भीतरी आडम्बर और कुत्सित व्यभिचार तथा तंत्र मंत्रों का जंजाल देख चुके हैं और उससे ऊब गये हैं। उन्हें कोई पवित्र मार्ग चाहिये। वे देर तक टहलते रहते हैं और फिर गोरखनाथ की धूनी की ओर बढ़ जाते हैं।

मेले में संवाद फैलता है तो हलचल मच जाती है। कलिकाल सर्वज्ञ को गोरखनाथ ने शास्त्रार्थ में पराजित करके नाथ सिद्धामृत कौल संप्रदाय में दीक्षित किया है तो सब एक बार चकित रह जाते हैं।

मेखलापा कहती है : 'यह कैसे हुआ ?'

एक बौद्ध कहता है : 'गोरख भी ब्राह्मण है, शांतिपा भी थे। यह

कायायोग के शैवसाधक प्रच्छन्न ब्राह्मण हैं। ये दिखाने को वेद का विरोध करते हैं। वैसे इनका उद्देश्य अनात्मन् के सिद्धान्त का खंडन करके ब्रह्म की स्थापना करना है। ये अवैदिक शैवों का संगठन जो वामाचार के विरुद्ध उठ रहा है. असल में संघ की वज्र साधना का विरोधी है। इनमें और ब्राह्मणों में भेद ही क्या है!

कण्हपा कहता है: 'बौद्ध और शाक्त, और शैव परस्पर भेद होने पर भी एक ही लक्ष्य की ओर जाते हैं। आदिनाथ ही बुद्ध हैं। महासुख का वर्णन यद्यपि सर्वज्ञ ने नहीं किया, परन्तु वे तो बोधिसत्वों के रूप में इसी का अनुभव करते हैं। वे ही ध्यानी बुद्ध बनते हैं। नाथमत और बौद्धमत का भेद ही क्या है? परन्तु गोरख अपने गुरु का विरोध कर रहा है। मत्स्येन्द्रनाथ को मैंने भोट देश और नेपाल में अवलोकितेश्वर की उपासना में देखा है। वे वामाचार के विरोधी नहीं हैं। फिर यह जो ब्रह्मचर्य का पाखंड है यह मूलतः शिवशक्ति के द्वय में ब्राह्मण धर्मियों के ब्रह्म का प्रतिपादन है जो न प्रवाह मानता है, न अनात्मा का लोप। अवश्य ही गोरख ब्राह्मण छत्री है।'

कनखलापा कहती है: 'गुरुदेव! गोरख की एकांत मार्गीय सिद्धि है।'

फिर वे सब हँसते हैं।

भादे कहता है: 'नाथमत का यह नया रूप है। गुरु मत्स्येन्द्र शैव परम्परा में चले गए थे, परन्तु उनका शिव भी बुद्ध से अद्वय था। परम-गुरु जालंधरनाथ पूर्व में उसी की साधना कर रहे हैं। गोरख का स्वर कहाँ से उठा।'

'वह तो गुरु मत्स्येन्द्र का उपदेश बताता है।' अचिंतिपा कहता है।

'गुरु मत्स्येन्द्र ने ब्रह्मचर्य को भोग में योग कहा था। किन्तु यह तो अलिप्ति का अर्थ ही दूसरा कर रहा है। इसके आदर्श से तो संघ ही नष्ट हो जाना चाहिए।'

'वह तो अश्वारोही योगी तैयार कर चुका है। बहुत से म्लेच्छ भी उसके अनुयायी हुए हैं।'

'म्लेच्छ इन ब्राह्मणों से तो श्रेष्ठ हैं।' अचिंतिपा कहता है।

और इसी तरह वे बातें करते रहते हैं।

बातें समाप्त नहीं होतीं।

गोरखनाथ आ गया है। वह एक नया स्वर उठा रहा है। उसका स्वर फैल रहा है। वेदान्ती कह रहे हैं कि चलो शांकरमत की विजय है। शूद्रों का मत है परन्तु न जाने कितना दुराचार इनमें घुसा था जो यह शुद्ध किए दे रहा है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के पंडित कहते हैं कि गोरख का शिवशक्ति मत दर्शन में प्रत्यभिज्ञादर्शन ही है। पद्धति भेद है तो क्या। पातंजल योग के अनुयायी कहते हैं—गोरख राजयोग को ही हठ-योग से आगे मानता है, क्योंकि पवन और शुक्र के संयम से भी कठिन वह चित्त वृत्ति का निरोध मानता है, जो राजयोग की ही विजय है।

और इसी तरह न जाने कितनी बातें चलती हैं....

हवा चलती है तब साँस सी लूक उठाती है। महालङ्ग को अंधकार में कोई दीखता है।

'कौन ?'

'मैं हूँ भादे ! तुम ?'

'महालङ्ग।'

'ओह ! गुरु गोरखनाथ के शिष्य हो ?'

'कण्हपागुरु के शिष्य से मिल रहा हूँ।'

फिर वे मिलते हैं। कहाँ कहाँ घूमे ? फिर पीठों, तीर्थों की बातें।

उनके विषय और हैं।

बातें और हैं।

'आओ।' भादे कहता है।

'कहाँ ?'

'हमारा शिविर है उधर।'

'हम आकाश के नीचे रहते हैं ?'

भादे पर प्रभाव नहीं पड़ता। कहता है : 'हम तुम दोनों ही एक ही गुरु की शिष्य परम्पराओं में हैं। कल हमारे तुम्हारे गुरुओं का शास्त्रार्थ

है। परन्तु मैं विभेद का कारण नहीं समझता।'

भादे चुप रह कर देखता है।

महालंग कहता है: 'भेद यदि पद्धतिमात्र में है तो वह क्षम्य है। गुरुदेव ने योगमार्ग फैलाया है और देख ही रहे हो कि लोक में विभिन्न मतों के अनुयायी उनके पीछे एकत्र हो रहे हैं।'

भादे कहता है: 'ठीक कहते हो। आओ इस विषय पर मनन करें।'

दोनों शिविर में प्रवेश करते हैं। मशाल जल रही है। वे आसनों की बातें करते हैं। फिर भादे कहता है कि संयोग में विभिन्न आसनों का विभिन्न फल मिलता है।

महालंग कहता है: 'आसन सुख से बैठना है भादे? उसे स्त्री से संबद्ध न करो।'

'हमारे परमगुरु ने तो स्वयं आसन का रूप बनाया है।'

'मुझे दिखाओ।'

महालंग देखने को उत्सुक है। भादे पहले उसका फल समझाता है, महालंग सिर हिलाता है।

भादे कुछ आसन करता है। महालंग देखता है।

भादे कहता है: 'यही जालंधर बंध है।'

भादे को गर्व है। उसके गुरु के गुरु ने स्वयं एक बंध का प्रचलन किया है।

किन्तु महालंग को भी कम गर्व नहीं। वह दिखाता है एक और आसन और कहता है: 'यह गोरख बंध है।'

भादे कहता है: 'महाचार्य श्री लक्ष्मीकरा ने साधकों के लिये जो कहा है, वह मेरे गुरु सदैव कहा करते हैं।'

महालंग कहता है: 'मुझे अपना मत समझाओ।'

भादे कहता है: 'यक्ष ही मूल वज्री है। वह वज्रपाणिबोधिसत्व है। वही सर्व तथा गहाधिपति है। महायक्ष वह गुह्यकाधिपति है। प्राणी वज्रधर है। जगत् की स्त्रियाँ कपालवनिता अर्थात् कपालिनी हैं। और साधक हेरुक भगवान् की मूर्त्ति है जो उससे अभिन्न है। हेरुक शिव का

ही एक रूप है। काया में १० नाड़ियाँ प्रधान हैं। इनके समह में हृदय-पद्म के बीच सूक्ष्म आकाश देश है, वहीं प्राणादि का आधार शिवस्वरूप कूटस्थ आत्मा स्थित है। नाड़ियों के उदयक्रम से पंचामृत का आकर्षण किया जाता है और आकाश विचरण की सिद्धि प्राप्त होती है।'

महालिंग कहता है : 'पंचामृत क्या हैं ?'

भादे कहता है—'शुक्र, शोणित, मेद, मज्जा और मूल इनको ऊर्ध्व-गति करने से शरीर वज्रोपम हो जाता है।'

'गुरुदेव भी वज्रोली से यही सिद्धि प्राप्त करते हैं। मैंने भी की है।'

'तो फिर भेद कहाँ है। परमज्ञेय शिव है। शक्ति उपास्य है। उसके परे अपर शिव है। शिव और शक्ति के मिलन के बिना कुछ नहीं है।'

'किन्तु परमशिव तो निर्गुण है।'

'नेति नेति ही है।' भादे कहता है ?

'उपास्य क्या है ?'

'शक्ति।'

'फिर शिव से अभिन्न क्या है ?'

'कुछ नहीं।'

'तो भेद क्या है ?'

'भेद नहीं। मिलन ही सुख है।'

'वह किस मिलन में है ?'

'स्त्री ही शक्ति का रूप है।'

'स्त्री बाहर है कि भीतर ?'

'भीतर भी बाहर भी।'

'स्त्री का वाह्य रूप वासना है।'

'नहीं। उसमें नित्य सुख है। भैरव की उपासना के लिये वह आवश्यक है।'

'उपासना क्या है ?'

'चर्बी, आँत, मनुष्य का माँस इसकी आहुति देनी चाहिये। नर-कपाल में सुरा-पान करना चाहिये। मनुष्य का ताजा खून महाभैरव का

उपहार है। इसीलिये कपालवनिता को सदैव साथ रखना चाहिये। मदिरा ही से पशु का पाश कटता है। यही कुलमार्ग है।'

महालंग कहता है : 'फिर दया कहाँ है? नरबलिहिंसा ही है। मदिरा से बुद्धि भ्रष्ट होती है। स्त्री की भग में शुक्र अधोगति होता है। यह कुल मार्ग है, परन्तु अकुलमार्ग तो इससे भी ऊपर होना चाहिये।'

भादे सोचता है। कहता है : 'सहज है यह साधना क्योंकि तंत्र मंत्र, ज्ञान, ध्यान, यहाँ तक कि गुरु की भी आवश्यकता नहीं। मद्यपान से बहुत विभोर आनन्द होता है। उससे भी बड़ा है स्त्री से संभोग।'

'इसमें निरंजन तक गत्य क्या है?'

'निरंजन शून्य है। वही महासुख है। सत् है।'

'क्या वह निषेधात्मक है?'

'नहीं, विधात्मक।'

'उसको प्रगट करो।'

'वह चार प्रकार का है।'

'बताओ।'

'प्रथमानन्द। फिर परमानन्द। फिर विरमानन्द।'

'रुके क्यों?'

'सर्वश्रेष्ठ है सहजानन्द। वही सुखराज है।'

'उसे व्यक्त करो।'

'वह स्वसंवेद्य है। अनुभवमात्र से जाना जा सकता है, अस्मिता वहाँ नहीं रहती। यही अनन्त है, अनादि अनन्त!'

'क्या यही निर्वाण है?'

'नहीं। न वह जन्म है न मोक्ष, न भव, न निर्वाण।'

'यह शैव दृष्टि से दूर नहीं।'

'भेद व्यर्थ ही है महालंग।'

'शरीर का चरम प्राप्तव्य कहाँ है?'

'शरीर में ही।'

'मुझे कहो।'

'मेरुदण्ड ही कङ्काल दण्ड है, मेरु पर्वत। चरणतल में भैरवरूप धनुषाकृति वायु है, कटि में त्रिकोण उद्धरण। उसके तीन दलों पर वर्त्तुलाकार वरुण का निवास है और पृथ्वी है हृदय में जो चतुस्र भाव से सर्वत्र व्याप्त हैं। गिरिराज है सुमेरु। उसके कन्दर कुहर में नैरात्म-धातु जगत उत्पन्न होता है। इसी में पद्म है उसमें बोधिचित्त के गिरने से कालाग्नि प्रवेश करती है। इसी से शुक्र को ऊपर खींचना चाहिये।'

'पद्धति भेद है। मूल भेद नहीं है। पद्म और वज्र मूल में शक्ति और शिव हैं। किन्तु क्या तुम्हारा तात्पर्य स्थूल लिङ्ग और योनि से है?'

'हाँ।'

'तो साधना स्थूल है।'

'यदि चित्तरत्न संक्षुब्ध हुआ तो।'

'उपभोग में तृष्णा का अन्त कहाँ है ('

'चित्त के निरोध में।'

'उसका गत्य?'

'शून्य।'

'तो कहो कामना का उपभोग साधन हैं।'

'साधन ही है।'

'शून्यता ही गुरु है?'

'हाँ।'

'तो परम शिव आदिनाथ गुरु नहीं हैं?'

'वह भी शून्य ही हैं। वही वज्रधार हैं। समस्त बुद्धों के गुरु वही हैं।'

'इसमें शक्तियों का स्वरूप क्या है?'

'मोह, ईर्ष्या, राग, वज्र, और द्वेष।'

'इसका संयमन?'

'वायु निरोध, जो ललना रसना है उनको ही प्राणवायु का वाहन करने वाला समझो। पहली प्रज्ञाचंद्र है। दूसरी सूर्य। बीच की नाड़ी अवधूती है। अवधूती के जागरण में ही साधक में ग्राह्य ग्राहक वर्जि-

तत्व आता है। मेरु के शिखर पर महासुख है। वहाँ एक चौंसठ दलों का कमल है जो चार मृणालों पर स्थित है। वहीं वज्रधर पद्म का आनन्द लेता है। वे चार दल ही शून्य, आर्तशून्य, महाशून्य और सर्व-शून्य हैं। सर्वशून्य में ही उष्णीशकमल है, वहीं डाकिनी जालात्मक जालंधर गिरि शिखर है—वहीं महासुख है। वहीं पहुँच कर योगी वज्र-धर हो जाता है। वहीं सहजानन्द मिलता है। कायात्मक आनन्द, वाचात्मक बन कर मानसात्मक बनता है और अन्त में ज्ञानात्मक बन कर महासुख बनता है। यह चंचल चित्त ब्राह्मण है, और अवधूती नाड़ी डोम्बिनी है। तभी वह भटकता है। उसे छूकर उसी से संग करने से सुख मिलता है।'

'पद्धति भेद है।'

'तुम्हारा बंधन कहाँ है?'

'बंधन नहीं भेद है।'

'वह क्या?'

'वज्रधर शून्य है पर सांजन है।'

'वहीं निरंजन।'

'फिर सिसृक्षा कौन करता है?'

'कोई नहीं।'

'तो यह 'है' कहाँ से है?'

'सदैव वर्त्तमान प्रवाह है।'

'इसका नियंता?'

'कोई नहीं।'

'परमशिव?'

'कल्पना है वह। तुम परमात्मा मानकर प्रवाह को रोकते हो?'

'होने की ही बात में प्रवाह है। प्रवाह का रूप ही आत्मा मानते हो?'

'हाँ।'

'परन्तु आत्मा का मिलन किससे होता है?'

'तुम ब्राह्मरों की सी बात करते हो ?

'तो प्रलय में क्या होता है ?'

भादे नहीं बताता। कहता है—'प्रवाह है।'

'मैं बताता हूँ।' महालंग कहता है।'

'गुरु वचन कहो।'

'सुनो। शून्य स्वयं में कुछ नहीं। जो कभी नहीं था, वह कभी हो ही नहीं सकता। प्रवाह का प्रारंभ कहाँ है ?'

'तुम ही कहो !'

'कार्य्य अव्यक्त है तो कारण है, व्यक्त है तो कार्य्य। प्रलयकाल में अद्वितीय पर शिव ही समस्त जगत् के प्रपंच को अपने में विलीन करते हैं और वे ही प्राणियों के कर्मफल को सूक्ष्म रूप से अपने भीतर स्थापित करके रखते हैं। सृष्टि फिर प्रारंभ होती है।'

'क्यों होती है ?'

'प्राणियों का अवशिष्ट कर्मफल पकना बाकी रहता है। तभी शिव में अव्यक्त भाव से स्थित रहने वाली शक्ति-सृष्टि करने की इच्छा-सिसृक्षा बन कर व्यक्त हो जाती है। उसका आद्य रूप ही त्रिपुरा है। यह स्वयं प्रगट होती है और स्वयं ही सृष्टि रचती है। वह ब्रह्म से जन्मी है सो चिन्मात्र से जन्मी है तो चिद्रूपा है। ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृ को वह समेटती है तभी त्रिपुरा है। आदि कारण शिव ही है। तुम शक्ति को ही आदि मानते हो और अंत भी। शून्य वज्रधर यद्यपि शक्ति से महा-सुख प्राप्त करता है, पर तुम शक्ति को कारण मानते हो। कारण तो शिव है।'

भादे नहीं मानता। कहता है: 'जगत प्रवाह है। उसमें परमशिव क्यों स्थिर है ?'

'यही बौद्ध नास्तिकता है। शिव, शक्ति, सदाशिव और चार तत्त्व हैं। विद्या और माया भेद की अनुभूति का निराकरण और स्वीकृति हैं। शिव ही बद्ध होकर जीव है। हम पहले अंतरंग उपासना करते हैं, तुम बहिरंग।'

'लक्ष्य एक ही है।'

'पद्धति अलग है और प्रातव्य भी। भोग नहीं, कठोर संयम से निर्विकल्पक आनंद मिलता है। तुम्हारे गुरु का पथ स्थूल है अतः निम्न-कोटि का है।'

'हमारा मार्ग सहज है, तुम्हारा दुरुह। श्रीसुन्दरी की साधना में भोग और योग एक साथ मिलते हैं। जिसमें इंद्रियार्थ के भोग में संशय नहीं, भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं, वही सर्वत्र समान बुद्धि है।'

'स्थूल व्याख्या न करो भादे योगी! यह सब काया के भीतर की व्याख्या है। यह सब अध्यात्मिक है। गुरुदेव कहते हैं कि परमशिव ब्रह्मचारी हैं। वही योगी को श्रेय हैं।'

भादे कहता है: 'यह भय का दर्शन है।'

'यह साधना का कठिन पथ।'

'एकांगी है।'

'क्यों?'

'स्त्री की सिद्धि क्या है?'

'स्त्री शक्ति है।'

'क्या वह आत्मवत् में अस्मिता से अलग है?'

'नहीं! सब कुछ वही परमशिव है।'

'फिर उसका गत्य क्या है?'

'शक्ति अपनी सिसृक्षा के रूप में ही तो स्त्री रूप में रहती है।'

'तब उसे सिद्धि नहीं चाहिये?'

वह तो आद्या है, माता है।'

भादे हँसता है। कहता है: 'कभी संजोग किया है?'

महालंग चिढ़ता है। कहता है: 'पशु ही करते हैं।'

'तभी योगी जन्म लेते हैं।'

महालंग नहीं सहता। कहता है: 'जन्म पशु ही लेते हैं। साधना से योगी बनते हैं और स्व का साक्षात्कार करते हैं।'

'स्त्री का कर्मफल कैसे नष्ट हो सकता है?'

महालंग उत्तर नहीं दे पाता। कहता है : 'मैं गुरुदेव से पूछ कर बताऊँगा।'

भादे हँसता है। कहता है : 'इस गुरु से पिण्ड छुड़ा ले योगी। गुरु कण्हपा की शरण में आ। एक बार उस महासुख का भी अनुभव कर।'

एक स्त्री भीतर आती है।

'महामुद्रा !' भादे कहता है।

'यह पशु है।'

'मुक्त क्यों नहीं होता ?'

'बद्ध है, भयभीत है।'

'किसका भय !'

'गोरखनाथ का।'

'वह सुख को क्या जाने ?'

'मेरे गुरु,' महालंग कहता है—'पहले वज्रयानी थे और देख चुके हैं। कहते हैं, वह सुख नहीं, स्खलन है। उसमें शुक्र गिरता है।'

'कहाँ ?' स्त्री पूछती है।

'योनि में।'

'वह क्या है ?'

'राक्षसी।'

'मूर्ख ! वह आद्या का चिन्ह, जैसे लिंग वज्रधर का। मिथुन न हो और मैथुन न हो तो सारी सृष्टि का कार्य्यव्यापार बंद हो जाये। उसे तू रोक लेगा ?'

'ठहरो ! वह गुरु से पूछेगा।' भादे व्यंग्य करता है।

'मूर्ख।' महामुद्रा कहती है। 'डोम्बिनी हूँ। गङ्गा स्नान का फल पायोगे। गुरु से क्या पूछोगे। पूछना है तो जाकर सिद्ध योगिनी मेखलापा से पूछो। गुरुदेव कण्हपा से पूछो। पूछो विरुपा सिद्ध से।'

बढ़ कर महालंग का हाथ पकड़ती है। महालंग को लगता है कि घिर गया है वह माया है। बड़ा भयानक है उसका घिराव ! चिर-संचित ऊर्ध्वगतिरेतस ! अंत में स्खलित होगा एक मांस पिण्ड-योनि में। क्षणिक

सुखमात्र ही तो हैं। उसमें शाश्वत सुख कहाँ है। वह तो गुरु के पास हैं। सब कुछ काया के भीतर ही है। कहता है : 'ठहर जा माया ! तू मुझे नहीं जीतेगी।'

वह चला जाता है। दोनों देखते रह जाते हैं।

एक लड़का धीरे धीरे चल रहा है। वह अंधकार में चौकन्ना सा देखता जारहा है।

उधर किसी सामंत का स्कंधावार टिका है। उद्बद्ध जूट सैनिक वहाँ भोजन पका रहे हैं। दिन में वे इधर उधर घूमते हैं। रात को एकत्र होकर गीत गाते हैं। साधुओं के हाथियों की भाँति सामंतों के भी हाथी झूमते हैं। बौद्धों के वैभव की थाह यहाँ भी नहीं मिलती।

पल्लव, सैंधव, कोकंण, कोसल, केरल, टक्क, अहीर, कीर, खस, अंग, कलिंग, गंग, जालंधर, वत्स, यवन, गुर्जर, बर्बर, द्रविड़, गौड, कर्नाट, बराड़, लाट, कोंग, वंग, मालव, पंजाब और न जाने कहाँ के ये सैनिक इस मेले की विचित्रता बढ़ा रहे हैं। जाट बौद्धों के साथ हैं। राजपुत्र अवश्य ब्राह्मणों के साथ हैं।

वह एक सामत है जिसने राज्य के लिये स्वयं पिता की हत्या की थी। पानदान लिये उसकी दासी बैठी है। वह जानती है कि दिन में पान में चूना और रात में कत्था ज्यादा लगाना चाहिये। उसके स्तनों पर मालती की माला पड़ी है। सामंत को उसके नितंब अत्यंत प्रिय हैं। वह कपूर डाल कर पान लगाती है और उस पर विचित्र चित्रकारी भी करती है। शिविर चंदन और अगरुधूम से महक रहा है। कोई स्त्री वीणा बजा रही है।

लड़का उसे देखता है तो जैसे उसका हृदय कसक उठता है।

आगे बढ़ता है। वेश्याएँ इधर ठहरी हैं। वे धर्मलाभ प्राप्त करने आई हैं। साधुदर्शन से ही पाप धुलते हैं। वेश्यागमन में वाममार्गियों को बहुत पुण्य मिलता है। बहुत सी पुण्य ही लुटाती हैं। देवदासियों को देख कर वे स्पर्धा करती हैं।

लड़के को मार्ग बढ़ाता है।

ग्रामीण तरह तरह की बातें कह रहे हैं। वे कभी योगियों के चमत्कारों की बातें करते हैं, कभी कुछ। उनको किसी भी अंधविश्वास में विश्वास है। उन्हें रूढ़ि का अहंकार है, परंतु जैसे जीवन एक परंपरा है और उसके अतिरिक्त उन्हें कोई इच्छा नहीं।

सामंत के स्कंधावार के पीछे कहीं की रानी ठहरी है। उसके यहाँ कोई स्त्री मलय तिलक दे रही है, उसके आगे आरसी धरी है। श्रेष्ठ रत्नों के आभरण पहने है, जिसके चरणों पर दासी कुंकुम लगा रही है। मधुर गीत स्वर उठता आरहा है। वह शायद बौद्ध उपासिका है।

लड़का आगे बढ़ता है।

दरिद्र और भिखमंगे पड़े हैं। फटे बस्त्र, उनमें स्त्रियाँ भी हैं। कैसा दुःख है। इनका कल्याण कहाँ है!

लड़का सिहर उठता है। और बड़बड़ा उठता है: करुणाचित्त रक्षा करो।

उसका स्वर कोई नहीं सुनता।

आगे कुछ लोग बातें कर रहे हैं। एक कह रहा है: उत्तर में एक द्वीप है। कहते हैं वहाँ नित्य उत्सव होते है। वहाँ सब सदैव तरुण रहते हैं। वहाँ कोई बुरा आदमी नहीं। सब सज्जन निवास करते हैं। न वहाँ कोई किसी को सोखता है, न वहाँ क्रोध ही है। आलस्य का वहाँ काम ही नहीं। मृत्यु और रोग की न चिंता है न दीनता....

लड़का नहीं रुकता। होगा ऐसा देश, पर वह तो उस पर विश्वास नहीं करता।

आगे कोई कह रहा है: सिद्ध लुईपा ने जब देखा तब सोचा कि क्यों न इसे दण्ड दूँ तब तुरंत उन्होंने...

अंधेरा बढ़ गया है।

इधर गोरखनाथ का स्थान है।

एकांत में योगी बैठा है। विचार कर रहा है। धूनी जल रही है। धकधक!

'लंग!'

'गुरुदेव !

'महालंग कहाँ है ?'

'मेला देखने गया है गुरुदेव !'

लंग हट जाता है।

गुरु गोरखनाथ बैठ जाता है—

रात के चारों पहर आलिंगन और निद्रा में बिता कर संसार विषयों में बहा जारहा है। गोरखनाथ हाथ उठा कर पुकारता है कि हे मेरे भाई शुक्र ही मूल है उसे मत हारो।

लड़का एकांत में ठिठक जाता है।

गोरख गारहा है—

मैं जाति का सुनार हूँ। तो मुझ से रस अमृत रूप सोना ले जाओ। मैंने धमनी तो धौंकनी बनाकर धौंका, तब सिद्धि की। रस की यही जमना है। गगन का महारस मिल गया।

लड़का बैठ गया है।

गोरख फिर गा रहा है।

हे जानकार ज्योतिषी ! देखो और विचारो कि पहले पुरुष हुआ कि स्त्री। न वहाँ वायु है, न बादल, बाबा ने वहाँ बिना खंभे का मण्डप रचा, लेकिन उसकी उत्पत्ति करने वाली तो वह नारी ही थी ! जब बाप नहीं था, तब भी वहाँ बैठी थी। यह माता (माया) बाल कुँवारी है। इसने अपने स्वामी को पालने में लिटाया और वहाँ हिंडोला झुलाने वाली हुई। माया कहती है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों मेरे पैदा किये हुए हैं और मैं ही इन तीनों की पत्नी भी हूँ। दोनों हाथों में मेरी माया है। इड़ा, पिंगला, मेरी खाटलडी हैं और जीव रजाई है। पृथ्वी पत्थर और पानी मेरा पद्योछा है। वह भी मेरी सौड़ के लिये छोटी है। ओखली में जनम बीत गया फिर भी चावल सँबरा-सारा न गया। मछिंद्रनाथ के प्रसाद से गोरख जती कहता है कि इस तत्त्व को विचार कर देखो।

लड़का देख रहा है। निर्धूम अग्नि के सामने कैसा बालक सा बैठा

है। निस्तरंग। शांत। उसमें जैसे बिकार ही नहीं। मन में हूक सी उठती है।

अंधकार में वह पीछे हट जाता है।

कोई पास आता है।

'महारानी !'

लड़का रो रहा है।

'महारानी !'

वृद्ध ब्राह्मण मंत्री कहता है : 'क्या हुआ ?'

लड़का तो सामदेई है।

आई है पति खोजने।

नारी की अपार तृष्णा। अनंत आकाश एक नारी का कपोल है जिस पर वियोग के असंख्य अश्रुओं के रूप में नक्षत्र झिलमिला रहे हैं। गोदावरी भी वेदना की एक धारा है। कसक। माटी की सी कसक, गंधमय पुष्प के जन्म से पहले फूटते अंकुर की बेला की कसक। विदग्ध मानस का फूत्कार है यह पवन। न जाने कितनी रातें बीत गई हैं।

'वेदबाह्य,' ब्राह्मण मंत्री कहता है—'योगी ! यह गृहस्थ मार्ग नहीं समझेगा देवी ! इससे राजा नहीं मिलेगा लौट कर।'

लड़के ने उष्णीश उतार दिया है। जूड़ा दीख रहा है। पुरुषवेश पर वे केश, सहसा ही उसे विचित्र बना देते हैं।

पगड़ी बाँध लें देवी ! यह उज्जयिनी की मर्य्यादा का प्रश्न है। उज्जयिनी की असूर्य्यंपश्या महारानी इस प्रकार अवगुण्ठनहीन खड़ी रहे ! ब्राह्मण ! राजकुल की यह दशा ! हे कलियुग ! तेरी अपार महिमा है। इसी पवित्र भरत भूमि में जहाँ ऋषियों के नाद उठते थे वहाँ यह शूद्र और अंत्यज ऐसा विद्रोह कर रहे हैं। देवी ! शंकराचार्य्य के पूर्व पीठ से जगद्गुरु आये हैं। मैं उनके दर्शन कर आया हूँ। वे राजा के लिये सन्यास के विरुद्ध हैं, क्योंकि उससे वर्णधर्म विनष्ट होता है।'

'जानती हूँ मन्त्री ! किंतु वे भी तो पुरुष ही हैं ! वेदांती भी क्या स्त्री से घृणा नहीं करते ? मैं तो बोधिसत्व की उपासिका थी। अब मेरा कोई उपास्य नहीं रहा। मेरा जीवन अंधकारमय है। पुरुष पुरुष

एक हैं, बौद्ध हों, या वेदवाह्य, या जैन या योगी या वेदांती, या सांख्य ! नारी के लिये कहीं भी स्थान नहीं है। सब माता के उपासक हैं; परंतु विधाता ने युवती को भी हृदय दिया है उतना ही तो पवित्र ! प्रकृति ने जो काया दी है वह क्या पाप है ? उसका अपना क्या धर्म नहीं है ? नारी क्यों बने माता ? मैं विद्रोह करती हूँ। नारी पुरुष हीन रहेगी।'

'आप उत्तेजित हैं देवी !' वृद्ध मंत्री कहता है : 'आप वेद की मर्यादा को देखिये। वेद का मार्ग लोक में धर्म की स्थापना है। यदि उसी वर्णधर्म के अनुसार लोक चलता तो यह अनर्गलता नहीं होती। यह भिक्षु संघ, यह योगि संघ, यह सब गार्हस्थ धर्म पर पलते हैं। खिलाने वालों को ही यह गाली देते हैं, माता को ही बुरा कहते हैं। पूर्वकाल में वानप्रस्थ होने पर ही लोग संसार को छोड़ते थे और छोड़ ही जाते थे। खेतों में सिलिया बीन कर खाते थे। महादेवी ! एक दिन आयेगा जब फिर लोक में धर्म की स्थापना होगी। उसे कोई आज तक नहीं मिटा सका और मिटा भी नहीं सकेगा।'

सामदेई कहती है : 'वृद्ध हैं अमात्य ! विश्राम करें। मैं आती हूँ।'

'कहाँ जायेंगी देवी ?'

'कण्हपा के पास।'

'क्यों देवी ?'

'मैं देखूँगी कि वह मुझे बचा सकता है या नहीं ?'

'वह बचायेगा ? वज्रयानी ! नास्तिक !'

'हाँ अमात्य ! कल उसका इस गोरख से शास्त्रार्थ है। मैं उसे आश्वासन दूँगी कि बौद्धसंघ को उज्जयिनी उपहार देगी यदि वह सच-मुच ही इस योगी को हरा देगा। योगी की पराजय में मैं जीतूँगी मंत्री ! भले ही स्वामी नहीं मिलें, किंतु वह सिद्धांत तो खण्डित होजा-येगा ? मुझे कुछ भी हो बौद्ध तांत्रिक, यह वाममार्गी इन योगियों से भले लगते हैं। आखिर कहीं तो स्त्री है उनके पथ में। भले ही मनु के पथ की भाँति नारी उनमें पूज्य नहीं फिर भी शक्ति तो कहते हैं उसे वे !'

'किंतु देवी ! वह व्यभिचार है। स्त्री को वे क्या सम्मान देते हैं !'

'पुरुष की साधना ही मूर्खता है मंत्री। तुम सद्-गृहस्थ हो। तुम्हारे माता थी, पुत्री है, पत्नी है। तुम उनका सम्मान समझ सकते हो। यह कहाँ समझते हैं! अप्राकृतिक अहंकार का पोषण करने के लिये यह सारा आडंबर बनाते हैं। किसलिये! मनुष्य की अपार शक्ति को जाग्रत करने के लिये? किंतु नारी उसमें त्याज्य है? मैं नहीं जानती मंत्री! परंतु या तो यह भूल है सब, या विधाता ने यदि हमें केवल साधन ही बनाया है, तो हृदय देकर भूल की है। ज्ञान का कठोर दंभ जो जीवन की ममता को तिरस्कृत कर देता है, वह कैसे मुझे सत्य हो सकेगा मंत्री! करुणा! कहाँ है करुणा! सर्वज्ञ ही झूठे थे!'

स्त्री फिर रो उठती है। मंत्री ने आँखें पोंछी हैं।

फिर प्रकृतिस्थ होकर कहा है: 'आप जायें। मैं आती हूँ।'

'मैं चलूँ?'

'नहीं, परंतु दूर न रहें मुझसे।'

'जो आज्ञा।'

स्त्री चलती है। मंत्री देखता है।

अब कण्हपा का स्थान पास आगया है। वृक्षों की ओर बढ़ जाता है मंत्री ओट में। लड़का पहुँचता है। मशाल के प्रकाश में सिद्ध कण्हपा देखता है। प्रभावशाली मुख। गोरख से आयु में अधिक। पास रखा है डमरू। सिंघाड़े के से केश। दाढ़ी मूँछ साफ़। देह का रंग काला। यही है वह प्रसिद्ध कृष्णाचार्य्य, जिसके ग्रन्थों की बौद्धों में धूम है। शैव जिसे अपना कहते हैं। सहजयानी भी, तांत्रिक भी। जिसके नाम से ब्राह्मण चिढ़ते हैं, जैन चिढ़ते हैं। लंबे कान दीर्घबाहु। मुख सौम्य।

घुटनों तक की धोती। सामने लटकते कटिबंध के दोनों छोर। हाथ में है माँस। सामने रखी है मदिरा। चलो! इस समय महामुद्रा नहीं है।

लड़का प्रणाम करता है।

'तथागत की शरण जाता हूँ। हे परम सिद्ध! प्रणाम करता हूँ।'

कण्हपा ध्यान में है। आशीष देता है, फिर जैसे नहीं देखता। ऐसे

बहुत आते हैं। किस किस पर ध्यान दे। उसके चमत्कार देखकर लोग काँप उठते हैं।

परंतु लड़का बैठ जाता है। कण्हपा का ध्यान उस पर जाता है। लड़का कुछ निर्भीक है, मानों वह उस सिद्धत्व से प्रभावित नहीं है।

पर लड़का चुप है।

सिद्ध कण्हपा सहसा गुनगुनाने लगता है—

सब जगु काअ-वाअ-मण मिलि
विफुरइ तहिसो दूरे।
सो एडु भंगे महासुह
णिब्बाण एक्कु रे।
एक्कु ण किज्जइ मन्त ण तन्त।
णिअ घरणी लइ केलि करन्त।
णिय-घरे घरणी जाव ण मज्जइ।
ताव कि पंच वण्ण विहरिज्जइ।*

लड़का सुनता है और उसमें एक सिहरन सी दौड़ जाती है। सिद्ध अपने को भूल गया है। लड़का तुलना करता है। गोरख! यह क्या भव्य नहीं है! यह भी सिद्ध है, वह भी सिद्ध है। दोनों ही योगी हैं। यह क्या कहता है? अपनी घरवाली के साथ केलि करो! और वह! घरवाली को छोड़ दो! परंतु चमत्कार और जादू दिखाने में कण्हपा का नाम कम नहीं। गोरख अकेला ही तो नहीं। चमत्कार यह सभी दिखाते हैं।

लड़का हिलता है।

सिद्ध तन्मय है।

लड़का सोचता है क्या करूँ।

खाँसता है।

---

*महासुख निर्वाण एक ही हैं—काय-वचन मन का एकीकरण ही। एक भी तंत्रमंत्र मत करो। अपनी घरनी=घरवाली को लेकर केलि-करो। जो अपनी घरनी से नहीं खेलता, तो पंचवर्ण का विहार ही क्या!

सिद्ध के नयन खुलते हैं। देखकर भी जैसे नहीं देखता। क्षण भर लड़का दब सा जाता है। फिर न जाने कैसे एक शक्ति सी जाग उठती है उसमें। साहस लौट आता है और वह सीधी दृष्टि मिलाता है।

'आचार्य्य !'

'क्या है बालक !'

'मेरा एक कार्य्य है।'

'तेरा ?'

'हाँ मेरा ही। कर सकेंगे ?'

'बालक कण्हपा को लोभ नहीं है।'

'अपने लिये न सही। सर्वज्ञ के शास्ता के संघ के लिये भी नहीं है ?'

कण्हपा सोचता है। निर्भीक है बालक। पूछता है : 'किंतु बालक तू जानता है किससे बातें कर रहा है ?'

'कृष्णाचार्य्य से। सिद्ध कण्हपा से। इन्द्रियजित् सिद्ध से। जिसके हृदय में लोक के लिये करुणा हैं, वैसी जैसी कि बोधिसत्व में थी।'

बालक की चतुरता से कण्हपा प्रसन्न होता है। कहता है : 'संघ को तू क्या देगा बालक ! संघ को तो देने वाले बहुत हैं। तू परिव्रज्या ले ले आगे चल कर। संघ का कल्याण होगा।'

'लेलूँगा सिद्धराज ! मेरा कार्य्य होजाये तो ! मैं संघ को अपार धन भी दूँगा।'

'लोभ न दे बालक। माँग। क्या माँगता है ?'

'कल शास्त्रार्थ में योगी गोरखनाथ के सिद्धांतों का खण्डन ! ऐसा खण्डन कि उसे आपका शिष्यत्व ग्रहण करना पड़े।'

लड़के के नेत्रों में एक प्रतिहिंसा है।

'वह तो होगा ही। पर मुझे इससे क्या मिलेगा ?'

'सद्धर्म की विजय !'

'साधु बालक। किंतु मैं तो स्वयं नाथ मतानुयायी हूँ।'

'फिर शास्त्रार्थ क्यों ?'

'क्योंकि वह सिद्धांत को विकृत कर रहा है।'

'यही मैं कहता हूँ।'

'परंतु तेरा क्या स्वार्थ है ?'

हठात् पगड़ी हटती है।

सामदेई का सौंदर्य देखकर कण्हपा की आखें झुक जाती हैं।'

'महामुद्रा !'

'नहीं। महारानी सामदेई। उज्जयिनी की भट्टारिका। महाराज भर्तृहरि की धर्मपत्नी। सिंहल की कुमारी। मेरे पति को इसी ने ब्रह्मचर्य और योग में डाल कर मेरा जीवन अंधकार में डाल दिया है। मैं आपका पथ-प्रदर्शन चाहती हूँ। आपके पथ में युक्ति है और स्त्री का भी स्थान है।'

. 'महामुद्रा !'

'परन्तु आप तो घरिनी की कहते थे न ! गाते थे !'

सिद्ध हँसता है। बहुत सरल हँसी जैसे बहुत नादान सामने आ गया हो।

कहता है : 'वह घरिनी तो मेरी अवधूती है, जो मेरे भीतर है। उसे मन-ब्राह्मण छूने से डरता है, क्योंकि वह तो डोम्बिनी है न ! डोम्बिनी का परम फल है उपासिके ! मैं उसी को जगाता हूँ। उसी में संचरण करता हूँ। उसके बिना शुक्र, मज्जा, मेद, शोणित इत्यादि पर काबू करना व्यर्थ है !'

'तो वह घरिनी नहीं !'

'योगी की वास्तविक घरनी तो भीतर है।'

रानी अवाक् है।

'तो महामुद्रा !'

'पुरुष का साधन है।'

'और पुरुष स्त्री का क्या है !'

'वह भी साधन है रानी। तू मेखलापा और कनखलापा से दीक्षा ले।'

'वह सब भी योगिनी हैं !'

'हाँ ! स्त्री शक्ति है, पारमिता है ।'

रानी उठ खड़ी हुई है । मन खट्टा हो गया है । कहती है : 'योगी सब एक से ही हैं । परन्तु मेरा काम ?'

'वह तो वैसे भी होगा ही ।'

रानी चल पड़ी है । अब पगड़ी नहीं बांधी है ।

अंधकार ।

सनसना रहा है पवन ।

देख लिया दोनों को ।

हठात् अंधकार में किसी ने रानी का हाथ पकड़ लिया है । कठोर हाथ ।

'भैरवी ! भैरवी !!'

कालामुख है कोई !

नरबलि देने वाला !

रानी की एक चीख फट पड़ती है ।

वृद्ध मंत्री दौड़ता है ।

खड्ग उठता है ।

फिर त्रिशूल पर झनझनाता है ।

रानी दौड़ कर हट जाती है ।

'कौन !' का भारी स्वर उठता है ।

पास आया है एक व्यक्ति ।

योगी गोरखनाथ ।

'रोक दो उठे हुए हाथ ।'

कालामुख गाली देता है ।

रक्तपात बच जाता है ।

अन्धकार में योगी गोरख कहता है : 'कालामुख ! नरबलि चाहते हो । तुम्हारा देवता प्यासा है ? हत्या में कौनसी सिद्धि है !'

'तू नहीं समझेगा गोरख ! तू नहीं समझेगा ।'

कालामुख चला जाता है ।

वृद्ध मंत्री छद्मवेश में है। गोरख नहीं पहँचानता। कहता है: 'जाओ वीर! यह साधु नहीं हिंस्रपशु हैं। जब तक लोक नहीं जागेगा तब तक ये ऐसी ही भयानक क्रियाएँ करेंगे। यह नहीं समझते कि नरकपाल और मदिरापान का क्या अर्थ है। पूर्व योगियों ने जिसे आध्यात्मिक सूक्ष्म अर्थों में जगत से वैराग्य के लिये इन शब्दों में कहा है, उसे इन्होंने ज्यों का त्यों ले लिया है।'

'ब्राह्मण मंत्री के होठों पर व्यंग्य खेलता है। कहता है: 'योगी! ब्राह्मण सो गया है, इसलिये कलि विभिन्न साधु-वेशों में खेल रहा है।'

योगी देखता है।

वह व्यक्ति चला गया है।

योगी के मुख से शब्द फूट निकलते हैं: 'ब्राह्मण! दंभ! ज्ञानहीन अहंकार!'

अंधकार में रानी और मंत्री चले जाते हैं। रानी एक वृक्ष के नीचे बैठ कर फूट फूट कर रोने लगती है।

वृद्ध का स्वर विगलित है। कहता है: 'भट्टारिके! इन धमनियों में जब तक रक्त है तब तक वह उज्जयिनी के राजकुल के लिये प्रवाहित होगा। रोयें नहीं! देवी जागें। आप ही जगद्धात्री हैं। वैदेही ने क्या दुख कम भोगे थे।'

'किन्तु अमात्य उसका राम तो साथ था न?'

'नहीं महारानी! एक दिन राम ने भी अग्नि-परीक्षा ली थी!'

'अग्नि-परीक्षा! राक्षसों में पातिव्रत जीवित रखने वाली तपस्विनी की परीक्षा। तभी तो वह पृथ्वी में समा गई।'

नया आवेश आता है। आता है और चला जाता है। वह फिर रो पड़ती है।

'कौन रोता है वहाँ?' एक वृद्ध स्वर। लगता है कोई दाक्षिणात्य का निवासी है। बहुत टूटी फूटी भाषा में पूछता है।

कोई पास आता है।

अमात्य देखता है!

वृद्ध कहता है : 'क्यों रुलाते हो ? वह तो लक्ष्मी है।'

स्त्री देखती है।

'कहाँ के योगी हो ?'

'योगी ? भक्ति ही योग है पुत्री !'

'दाक्षिणात्य हो ?'

'हाँ आलवारों का शिष्य हूँ। वैष्णव। योग तो भक्ति से ही मन में जागता है।'

'तो क्या तुम नारी से घृणा नहीं करते ?' रानी पूछती है।

'क्यों करूँगा घृणा पुत्री ! नारायण के पास ही तो लक्ष्मी है। सीता भी तो नारी थी। नर और नारी सब ब्रह्म स्वरूप हैं। परमात्मा के सामने सब ही भक्ति के अधिकारी हैं।'

'तो क्या तुम वैराग्य नहीं मानते ?'

'विषय सुखों में मन को भुलाना पाप है, वही माया है। अन्यथा नारायण की स्मृति करते हुए लोकधर्म में लगना तो पाप नहीं।'

रानी खड़ी हो जाती है।

नारायण !!

फिर उत्तर के भागवतों का यह स्वर आज तक क्यों नहीं सुनाई दिया। यह दक्षिण से कैसा स्वर उठ रहा है।

'तुम्हारे साथ कोई और है ?'

'केवल दो यात्री हैं।'

इस अपार भीड़ में केवल दो !

'कहाँ जाओगे यात्री ?'

'पुत्री ! हम तीर्थ यात्री हैं। सुना था यहाँ साधु सत्संग होगा। साधु-दर्शन करने आये हैं।'

'किये !'

'नयन धन्य हुए।'

'किन्तु यह तो भक्ति नहीं जानते।'

'सब अपने अपने मार्ग पर चलते हैं पुत्री ! नारायण ही सब जानते

हैं। हम तुच्छ मनुष्य क्या जानें ?'

'तुम वेदान्त नहीं मानते ?'

'क्यों नहीं मानते पुत्री। सब कुछ नारायण है। सब कुछ वही है। माया भी है। परन्तु माया भी उसी की है। सब कुछ उसी का है।'

रानी नया स्वर सुनती है।

वृद्ध कहता है: 'यात्री आलवार हैं अब भी ?'

'अब नहीं हैं। वे भक्त श्रेष्ठ थे। उनके अनुयायी हम हैं।*

'अब कहाँ जाओगे !'

'तीर्थ यात्रा पर।'

रानी झुक कर वृद्ध के चरण छूती है। अन्धकार में वृद्ध अमात्य कहता है: 'वैष्णव। ब्राह्मण विरोध तुम्हारे मत में है ?'

'नारायण। नारायण ! ब्राह्मण और वेद की निंदा सुनना भी पाप है।'

वृद्ध कहता है: 'कौन जाति हो ?'

'अब संन्यासी है; जाति नहीं रही। पहले थी तब सुनार था। ब्राह्मण परम पूज्य हैं। शास्त्र कहते हैं।'

अमात्य कहता है: 'तुम्हारा मंगल हो संन्यासी ! तुम्हारा मत विजयी हो। चलो भट्टारिके।'

वे चले जाते हैं। रानी कहती है: 'अमात्य ! वह शूद्र था, फिर भी सबसे श्रेष्ठ था !'

अमात्य कहता है—'देवी ! यही ब्राह्मण कृत मर्यादा है। इसी को लोक ने भुला दिया है। एक दिन बुद्ध ने वेद की निंदा की थी। किन्तु इसीलिये कि तब हिंसा और कर्मकाण्ड की लोभी ब्राह्मणों ने अति

---

* आलवार ८ वीं शती में हुए। यह कथा १० वीं शती की है जब दक्षिण में कम्ब रामायण लिखी गई थी। २०० वर्ष बाद वैष्णव स्वर उत्तर की ओर चला। गाहिनीनाथ कृष्णोपासक थे। रामानन्द के समय यह मत उत्तर में मुक्ति बन कर छा गया।

करदी थी।* उसे अहिंसा का मार्ग पकड़ कर बुद्धावतार के रूप में विष्णु ने रोका था। परन्तु बुद्ध ने अनाचार और व्यभिचार नहीं किया। क्षमा हो देवी। बौद्धों ने ही इस व्यभिचार को बढ़ाया है और यह अवैदिक योग मार्गी और शैव……भयानक……घोर पातक…… घोर कलिकाल……

वे दूर निकल जाते हैं। फिर रात्रि की निस्तब्धता छा जाती है। अब भी नक्षत्र टिमटिमा रहे हैं। और गोरखनाथ की धूनी अभी भी जल रही है, जैसे गीता में लिखा है, जिस निशा में सब सो जाते हैं; उसमें भी संयमी जागता रहता है। और कएहपा जाग रहा है, वह शून्यशिखर पर पहुँच रहा है। कनखलापा, मेखलापा, अचिंतिपा, भादेपा और विरूपा सो रहे हैं। महालँग व्याकुल है। वह अभी गोरख से कह चुका है और गोरख कहता है: 'वत्स! कल अवश्य मुझसे कएहपा यही प्रश्न करेगा और मै उसे उत्तर दूँगा। तब तक के लिये अजपा जाप कर।'

अब वह सोऽहं—(वह मैं हूँ) करता साँसों के साथ जप कर रहा है…और रात बीती जा रही है……

ईसा की दसवीं सदी। इतिहास का एक छोटा सा पन्ना…… अंधकार……

और लंग अब धूनी के पास लेट रहा है।

'गुरुदेव!'

'वत्स।'

'चरण दबाऊँ?'

'नही वत्स!'

यों रात बीत रही है…बीतते भी नहीं बीत रही है…

और गोरखनाथ का स्वर गूँज उठता है—

न ब्रह्मा विष्णु रुद्रौ न सुरपति सुरा
नैव पृथ्वी न चाए

---

* श्रीमद्भागवत का विचार। इस युग से पहले ही लिखी गई थी। दक्षिण में।

नैवाग्निर्वापिवायुर्न न गगनतलं
नो दिशो नैवकालः
नो वेदा नैव यज्ञा न च रविशशिनौ
नो विधि नैविकल्पः
स्वज्योतिः सत्यमेकं जपति तव
पदं सच्चिदानन्द मूर्त्ते !*

गोदावरी की कलकल और भी मधुर सुनाई दे रही है। महालिंग का सोऽहं अब अहंसः (मैं वह हूँ) बन कर उलट गया है।

मनुष्य की साधना। अपार है यह यात्रा, लंबी, जाने कब प्रारम्भ हुई, कब अंत पायेगी……योगी कहता है…सब कुछ योगिराट् ही है, जीव भी, ब्राह्म भी……

एक और प्रयोग……

अन्धकार में अग्नि शिखा लगती है जैसे स्वयंभू लिंग है। ज्योतिलिंग है। और समस्त धूनी की काष्ट शक्ति है…योनिस्वरूपा…

इस समय सब सो गये हैं। धंधारी पर टिका सो गया है गोरखनाथ और महालिंग को नींद ने झुका दिया है उसका सोऽहं और हंसः का श्वास सृष्टि के पवन में मिल गया है, हो गया है वह अबोध…

गोदावरी के प्रशस्त प्रवाह पर काल बह रहा है, और गोदावरी काल पर बही जा रही है…

सब कुछ बह रहा है…योगी की निद्रा में जागरण सा…

धूनी की लपट का उजाला उठ रहा है। एक स्त्री। बहुत ही सुन्दर। युवती। गोरी। मदिरा पिये है। मद से अङ्ग उसके विह्वल हो गये हैं।

वही तो है जो महालिंग को मिली थी। महामुद्रा।

आकर खड़ी मुस्करा रही है। उसे दूर से देख रही है सामदेई। और भी पीछे हट कर खड़ा है वृद्ध मंत्री।

लौटते समय सुना था सामदेई और अमात्य ने । भादे-पा अपनी

* वह सच्चिदानंद मूर्त्ति ब्रह्मा विष्णु आदि सबसे परे है, उसकी जय हो !

महामुद्रा से कह रहा था : 'महालंग लौट गया महामुद्रे ! यह ठीक नहीं हुआ।'

महामुद्रा ने चुनौती के स्वर में कहा था : 'क्या चिन्ता करते हो ! मैं स्वयं गोरख को ही विचलित करूँगी।'

भादे-पा ने कहा था : 'असंभव नहीं है महामुद्रे। उसे मल में लायेगी तो कल्याण होगा।'

और सामदेई और अमात्य ठिठक गये थे।

रानी ने कहा था : 'अमात्य ! परीक्षा होगी।'

'हमें क्या ?'

'कल तक प्रतीक्षा नहीं करनी होगी हमें।'

अमात्य ने कहा : 'किन्तु देवी ! वह सब क्या कुलनारी के लिये देखने योग्य होगा।'

'अमात्य ! पतन तो मन का विकार है। एक बार गोरख झुके, उसके उपरान्त हमें रुकने की आवश्यकता नहीं, जाकर उसकी पराजय की घोषणा करनी रहेगी। चिन्ता न करें। कुल-गौरव अक्षोभ्य रहेगा।'

इसीलिये जब महामुद्रा चली तब इन्होंने पीछा किया !

महामुद्रा की प्रतिस्पर्धा दर्शनीय है।

अमात्य कहता है : 'देवी ! मैं उधर हटता हूँ। वृद्ध हूँ। मेरा धर्म इसको न देख सकेगा आपके संमुख !'

'अमात्य ! देखने को केवल मन का विकार है। मैं तो इतने में ही भीड़ें एकत्र कर दूँगी।'

अमात्य कहता है : 'यह ठीक है।'

और युवती बढ़ती है।

नींद की डोरियाँ रेशम की हैं। बड़ी मुलायम। इस समय देह हो जाती है नर्म कली। भोर के पहले शिथिल, जब रात भर नींद की मस्ती तन को और भी मदहोश कर देती है। ऐसा है यह निर्बलता का क्षण। शीतल वायु चल रही है। महामुद्रा के स्तनों के चन्दन की गन्ध अब योगी गोरख के पास मँडराने लगी है। महामुद्रा उसका कंधा पकड़ कर

हिलाती है। गोरख जागता है। पास····बहुत पास आ गई है वह····

गोरख भागता नहीं। घबराता नहीं। कहता है: 'माता!'

माता!

विषाक्त होता है महामुद्रा का मन! कहती है: 'मूर्ख! आद्या हूँ। त्रिपुरेश्वरी!'

'त्रिपुर सुन्दरी! माता!!'

उन नयनों में ही उठ आई है समस्त धूनी। देखकर महामुद्रा को लगता है—गगन शिखर पर एक बालक बैठा है।

सामदेई सिर झुका लेती है।

महालंग जागता है। महामुद्रा गुरु के पास बैठी है! कितनी वासना से देख रही है। वह काँप उठता है। परन्तु गुरु! निष्काम! महालंग सोचता है। क्या गुरु में काम नहीं! इतनी साधना कैसे पाता है मनुष्य! फिर कोई क्रोध और घबराहट भी नहीं। केवल सुनाई देता है: 'माता। बैठो! गोरख का गीत सुनो।'

महामुद्रा के नयनों से चिनगारियाँ सी निकलने लगती हैं। खड़ी हो जाती है। महालंग बैठ जाता है।

गोरख कहता है: 'माता नहीं सुनती महालंग। तू सुनेगा?'

'आदेश गुरु!'

गोरख गाता है:

नाथ निरंजन आरती सजते हैं! झाँझ बज रही है। नहीं। वह तो गुरु के शब्द हैं। गगन में अनाहत नाद का गर्जन हो रहा है। परम ज्योति वहाँ स्वयं विराजमान है। अखंड शिखाओं की है वह दीप-ज्योति! वह परम ज्योति दिनरात जागती है। उसीसे सकल भवन उजियाला हो रहा है। उस निरंजन देव के अतिरिक्त मुझे और कुछ भी दिखाई नहीं देता। उसकी कितनी अनन्त कलाएं हैं। उनका पार कौन पा सकता है। वहाँ शंख, मृदंग और बाँसुरी की ध्वनि उठ रही है। मोतीरूप ज्ञान से मैं इस कलश रूप देह को पूर्ण बन्दना कर चढ़ाता हूँ। सुरति निरति के फूल अर्पित करता हूँ। वह मूर्त्ति अमूर्त्त है। निज

तत्त्व ही उसका नाम है । वही सब देवताओं में श्रेष्ठ है । देखो मैं आदिनाथ का नाती, मछिन्द्र का पूत गोरख अवधूत आरती कर रहा हूँ ।

किसकी आरती ! यह तो तारे हैं । क्या यह भी उसी भवन की दीपशिखाएं हैं । क्या गोरख का मत वहाँ तक जा रहा है ! सृष्टि में उसे तल्लीन संगीत सुनाई दे रहा है ।'

अमात्य देखता है—महामुद्रा चली गई है । महालंग देखता है—जाते समय वह अपमानित सी विक्षुब्ध थी । उसकी ओर बढ़ी थी तब सिंहनी सी थी, इस समय जैसे वह सिमट गई थी । क्या इसी प्रकार परम शिव में आद्या भी सिमट जाती है जब वे शव बने रहते हैं । सामने यह कौन है ! इसको विकार नहीं है । सामदेई देखती है ।

'महारानी !' अमात्य कहता है ।

'चलिए अमात्य ! गोरख सचमुच योगी है । कहते हैं स्त्री स्त्री पर मोहित नहीं होती । किन्तु महामुद्रा का यह अनिंद्य सौन्दर्य, यह फूलों से लदे मौलसिरी वृक्ष जैसा महकता, झरता बरसता यौवन, आकाश के इन्द्रधनुष जैसा कमनीय लास""इसे देखकर तो मैं स्त्री होकर भी चमत्कृत हो गई थी । कहते हैं साक्षात् आदिनाथ शिव को जब विष्णु ने अपना मोहिनीरूप दिखाया था तब वे भी अचेत हो गए थे । किन्तु यह गोरख···

'आश्चर्य न करें देवी', अमात्य कहता है—'शुकदेव को रंभा भी नहीं डिगा पाई थी····'

हठात् रानी कहती है :' अमात्म ! स्त्री सचमुच दीन है । पुरुष को पराजित करने का, बाँध रखने का यह कैसा जाल है ? क्यों वह अपने को लता बनाये रखती है इस वृक्ष की !'

'चलिये देवी ! आप उत्तेजित हैं । यदि मेरी पुत्री यह कहती तो मैं उसे भी बताता कि स्त्री मूलतः माता है और तभी वह पुरुष के बिना अपूर्णता अनुभव करती है ।'

रानी का मन घुटने लगता है ।

अब शायद आकाश में शुक्रोदय को देर नहीं रही है....

जागरण व्याप्त होने लगा है....

आकाश में शीतपवन फेरे लगा रहा है और तब पक्षी चुह चुह करते जागते हैं। पहले कलरव में नींद को भगाया, दूसरे में जीवन को प्यार किया। बड़ी सुंदर है यह सृष्टि। गोदावरी सारी रात तो साँपिन थी, भोर की पहली किरन आते ही पलट कर सफेद सफेद पेट दिखा रही है।

असंख्य लोग गोदावरी में स्नान कर रहे हैं। एक मनुष्य है। परंतु उसके हज़ार मस्तिष्क हैं। सब के अलग अलग दृष्टिकोण हैं। एक ही सत्य को वे कितने रूपों में देखते हैं। परंतु एक दूसरे को वे बोलने देते हैं, एक दूसरे को पराजित करते हैं तर्क से....खड्ग से नहीं....खड्ग दार्शनिक का आयुध नहीं, राजा का है...राजा तो साधारण व्यक्ति है, कर्मों का फल इस जन्म में भोगने को अधिक भौतिक सुख पाता है, उसके सत्कर्म भी माया की आंधकता ही पाते हैं....यहाँ...सब यही मानते हैं....इसको सब स्वीकार करते हैं...

गोदावरी की धारा इन असंख्य प्राणियों को देख रही है। कौन जानता है उसे कितने पुराने पुराने समयों के मारकें की याद आरही है, कौन जानता है। वह जो स्वयं वही जारही है वह किसी की क्या याद करेगी...

भीड़ें जुड़ रही हैं। अपने महारानी वेश में सामदेई उपस्थित है। गोरख बकुल वृक्ष के नीचे हैं। आज शास्त्रार्थ है। विरूपा, अचिंतिया, मेखलापा, कनखलापा, चुणकरनाथ, घोड़ाचूली, धोबीपा, लंग, महालंग और सामन्त, असंख्य शाक्त, तांत्रिक बौद्ध, वाममार्गी, योगी, शैव एकत्र हैं। वैदिक शैव भी कौतूहल से आये हैं। षड्दर्शनवादी हैं, वेदांती हैं। भूत प्रेतों के उपासक, यक्षिणीसाधक···अरे वहाँ तो असंख्य लोग हैं।

उस भीड़ में हहर व्याप जाती है। आगे बढ़ रहा है करहपा और चमत्कार! वह धरती से उठ जाता है।* जय···जय····

---

* योगी को धरती से उठते मैंने देखा है।

जय सिद्ध करग्हपा····

गोरख मुस्कराता है। हाथ उठाता है।

करग्हपा धरती पर आ जाता है····

भीड़ चिल्लाती है : जय····जय····

जय गोरख···· जय महायोगी····

सामदेई देखती है····

देखता है वृद्ध अमात्य···· कनखलापा····गोरख प्रशान्त है। करग्हपा कुछ विक्षुब्ध····

गोरख कहता है : 'सिद्धराज को प्रणाम करता हूँ। सिद्धि तो निम्न स्तर की प्राप्ति है। लोक के मंगल और आत्मदर्शन के लिये हम तत्त्व विचार करें।'

अब शास्त्रार्थ प्रारम्भ होता है।

लोग समझते भी हैं, बहुत से नहीं समझते, परन्तु आज निर्णय का दिन है। कहते हैं जगद्गुरु शंकराचार्य ने ऐसे ही मंडनमिश्र से शास्त्रार्थ किया था।

तर्क उठ रहे हैं, कट रहे हैं।

सामदेई गंभीर खड़ी है। वह देखना चाहती है कौन जीतता है। वह चाहती है गोरख हार जाये, हार जाये गोरख···पर न जाने क्यों यह विचार उसे अच्छा नहीं लगता···यह कैसी विचित्र दुविधा है···· क्या चाहती है ? कौन जीते फिर····भीड़ निस्तब्ध है····कैसा अनुशासन है····गोदावरी नदी की धारा सुन रही है···· करग्हपा कहता है····

ब्राह्मण धर्म की बात मैं त्याज्य कहता हूँ। ब्रह्म और शिव यदि एक है तो आप वर्णधर्म को स्वीकार करते हैं।'

'ब्रह्म निरपेक्ष है अवधूत ! ईश्वर को इस रूप में मत लो। माया जड़ नहीं, स्वयंशक्ति है। आद्या है। चित्स्वरूपिणी है।' गोरख का उत्तर गूँजता है।

अब गोरख पिण्ड में ब्रह्माण्ड की बात समझा जा रहा है। सामदेई को कोई आनन्द नहीं। केवल देख रही है। इन लोगों को भी माता ने

जन्म दिया होगा। अपनी छाती पर इन्हें भी उसने सुलाया होगा। यह दुधमुँहे भी तब रोये होंगे और इन्हें उसने हाथों पर झुला झुला कर बहलाया होगा। उसे क्या पता था कि यह लोग वनों से भी निर्जन हो जायेंगे, समुद्र जैसे खलभल करेंगे और अग्नि की भाँति इस देह सहित ही धधक उठने का प्रयत्न करेंगे। क्या इनका आदर्श ही मनुष्य का सत्य है। ब्रह्म या वज्रधर! यह सब क्या है? उसके पीछे यह विचित्र जीवन क्यों बिताते हैं। धरती से उठ जाने को। मनुष्य में इतनी शक्ति है! फिर भी गोरख तो कहता है कि मनुष्य का गत्य और भी ऊपर है, यह सिद्धि तो निम्न स्तर की है····

सामदेई सोचती है। यह सिद्धि क्या है? गोरख कहता है ब्रह्मचर्य! यही शब्द तो बार बार उसके मुख से निकल रहा है। ऐसा बोल रहा है जैसे उसकी बात ही अन्तिम सत्य है। उधर कण्हपा स्त्री की शक्ति बता रहा है। यह ब्रह्म की बात करता है, वह कहता है कि ब्रह्म नहीं है। यह आत्मा की बात करता है, वह कहता है आत्मा नहीं है। फिर भी दोनों ही सिद्धियाँ प्राप्त कर चुके हैं! तो योग क्या है? सिद्धि क्या है? विभिन्न मार्गों पर चलकर भी अन्त लक्ष्य क्या है? गत्य क्या है? पर अब यह कैसा चक्कर है। ब्रह्म शून्य हो गया, शून्य ही ब्रह्म बन गया, आत्मा अनात्म सी बन गई और अनात्म आत्मा सा लगने लगा। देवता एक दूसरे के पर्याय से लगने लगे। यह क्या है। सबकुछ देह में समा गया····देह में ही ब्रह्ममाया····वज्रपद्म····अब फिर भी संघर्ष····

कण्हपा कहता है, 'योगी गोरख! उसी के लिये स्त्री है। महामुद्रा!'

गोरख कहता है : 'नहीं सिद्ध! स्त्री से संभोग वासना है, पतन है।'

'भोग से मोक्ष मिलता है। भोग से ही कौल को योग और भोग प्राप्त होते हैं और एक साथ मुक्ति होती है····'

'तुम आध्यात्मिक विषय का स्थूल अर्थ कर रहे हो। जब अवधूती को भीतर जगाते हो तो शक्ति को भी भीतर ही क्यों नहीं स्वीकार करते····'

'वह दमन और घुटन का पथ है योगी····'

'सिद्ध! वह सहज है····

'प्रमाण कौन है ? तुम····

'मैं बालक अनभिज्ञ हूँ। प्रमाण हैं परमगुरु मत्स्येन्द्र····

कराहपा हँसता है···· विद्रूप का हास्य···· भीड़ चौंकती है····

'हँसते हैं सिद्ध !'

'हाँ योगी !'

'कारण ?'

'कारण यही कि तत्त्व ही लुट गया। श्रम व्यर्थ गया। प्रमाण ही कच्चा है।'

गोरख सहसा विचलित होता है—

'सिद्ध !!'

'हाँ योगी ! धैर्य धारण करो···· हृदय को कड़ा कर लो····'

गोरख नहीं समझता।

'हाँ योगी।' कराहपा कहता है—'तुमने गुरु का उपदेश नहीं समझा। तुम ब्राह्मणों के बहकावे में आ गये। यह वैष्णवों का छद्म है ब्रह्मचर्य, जो कल तुम्हें वेदाचार की ओर ले जायेगा। गुरु, अपने गुरु को देखो। गुरु मत्स्येन्द्र मेरे गुरु जालंधरनाथ के गुरु भाई हैं। वे दोनों भी एक ही गुरु के शिष्य थे। नाथ मत का ही मैं प्रचार करता हूँ। नाथ मत यही है जो मैं बताता हूँ, क्योंकि मैं ना को थ करता हूँ—अनादि रूप को स्थापित····

गोरख कहता है : 'नहीं सिद्ध ! यह है ना अर्थात् 'नाथ ब्रह्म····मोक्ष-दान में दक्ष है वह, उसका ज्ञान कराना, और थ है अज्ञान की शक्ति को स्थगित करना···· तुम गुरु मत्स्येन्द्र को गलत समझ रहे हो····'

हँसता है कराहपा और कहता है : 'योगी ! तुम्हारा गुरु स्त्रीदेश में योगिनी कौलधर्म में आ गया है और उसने वामाशक्ति को स्वीकार किया है। स्त्रीदेश की रानी से उसने विवाह किया है और सुन्दरियों के बीच वह भोग और योग साध रहा है····

अंधेरा····

गोरख को लगता है आँखों के नीचे अंधेरा छा गया है....

कौन....

गुरुदेव....

गुरुदेव मत्स्येन्द्र....

मत्स्येन्द्र ही....

आदिनाथ ही....

नहीं....

नहीं....

परन्तु साधु, योगी और अवधूत ठठा कर हँस रहे हैं। भयानक व्यंग्य है। निर्मम है वह हास्य.... कनखलापा के चमकते दाँत....मेखलापा के कपोलों पर हास्य.... सब.... हा हा हा हा....हा हा हा हा....

महालंग और लंग का मुख काला पड़ गया है....गोरख स्तब्ध खड़ा है....

'जाओ !' कण्हपा का स्वर गूँजता है—'हठधर्मी का त्याग करो और इस शुष्क पथ को त्यागो। स्त्रीदेश जाकर देखो अन्यथा यदि तुम्हारा सिद्धान्त ही सत्पथ है तो देखें गुरु को दीक्षित करो...

हा हा हा हा....

गुरु को दीक्षा....

उल्टी गङ्गा....

फिर भी शील से विनम्र है गोरख.... है हतप्रभ....

विरूपा बढ़ कर कहता है....सिद्ध कण्हपा की....

परन्तु जय लोग बोल नहीं पाते। हठात् रानी सामदेई चिल्लाती है : 'ठहरो अवधूत !'

सब चकित ! विरुपा अप्रतिभ ! कण्हपा पहँचानता है।

'रानी !!'

'हाँ सिद्ध !' रानी कहती है—'अभी से तुम्हारे शिष्य तुम्हारी जय कैसे बोल सकते हैं ? अभी तुम विजयी कहाँ हुए हो ? अभी गोरखनाथ की पराजय कहाँ हुई ? यह तो गुरु मत्स्येन्द्र पर आक्षेप था। व्यक्ति का

उत्थान भी होता है, पतन भी। कौन जाने शिष्य ठीक है और गुरु गिर चुका है। मत्स्येन्द्र का पतन गोरख की हार नहीं है। गोरख का मन पतित हुआ है या नहीं, यह देखो। हो सकता है गोरख ही गुरु से ऊँचा है साधना में····अभी से तुम जय का अहंकार क्यों करते हो !'

वृद्ध अमात्य है भौंचक ! सिद्ध करहपा स्तब्ध ! और गोरखनाथ रानी के चरणों में प्रणाम करके कहता है : 'माता ! तेरा पति मेरा शिष्य है। तू साक्षात् माता पार्वती है तभी तूने वह रत्न दिया और अब मुझे मार्ग दिखाया है। आशिष दे माता ! गोरख बालक स्त्रीदेश जाकर गुरु को सत्पथ पर लौटा ला सके····'

सामदेई बोलती नहीं। आँखों के आँसू पोंछ लेती है····

कौन जानता है कि उस समय एकत्र समस्त मानवों–पंडितों, ज्ञानियों, दार्शनिकों, तपस्वियों, सिद्धों, योगियों···· में वही सबसे बड़ा धर्म दिखा रही है····

परन्तु स्त्री है न वह····इतिहास भूल जाता है····

'महालंग !'

'शांतिपा अब शांतिनाथ है।'

'आदेश !'

'महालंग ! गुरुदेव ! विक्रमशिला होकर ही चलेंगे या उत्तर पथ से ही चले जायेंगे····'

हिमालय के पाददेश में सिंहल के परे कदलीवन····कदलीवन से पूर्व में कामरूप-कामाख्या····उत्तर में भोट देश और भूतस्थान (भूटान)। इसके बीच में स्त्रीराज्य···· मैं पूछता हूँ गुरुदेव से····

और गोरखनाथ शिष्यों सहित चल पड़ा है···· कितनी बड़ी बाज़ी साथ है···· यदि जीता तो योगमार्ग की जय, वाममार्ग का नाश····यदि हारा तो गया····सब गया····

गुरुदेव····

और गोरख गा रहा है····

अक्षय पद धैर्य के स्तंभ और धुन की डोरी के सहारे शून्य में समाया

हुआ है—वही निरालंब आसन है.......... वहीं गोरख का दरबार लगता है....

गोदावरी का मेला उजड़ गया है....चले गये हैं सामन्त, गुरुलोग, चेले, स्त्रियाँ, वेश्या, ग्रामीण, दूकानदार....

गोदावरी बह रही है...पाट पर सन्नाटा है, किन्तु अब भी मेले की गन्दगी बाकी है, जहाँ यह आदमी रहता है, वहीं धरती को गँदला करता है लेकिन जहाँ गोरख टिका था....वहाँ क्या है....केवल भस्म... धूनी का धूँआ आकाश में भी अब नहीं दिखता, केवल भस्म है जो हवा से उड़ने लगती है......

[६]

असंख्य कोसों को पार करके, नदियों, वनों, जनपदों और पर्वतों को लांघते वे स्त्रीदेश आ पहुँचे हैं। कामरूप की सीमा पर। यही है कामरूप। कहते हैं जब सती के मर जाने पर शिव व्याकुल होकर उसे उठाये उठाये ब्रह्माण्ड में घूम रहे थे तब विष्णु ने दयाभाव से उन्हें शव-भार से मुक्त करने को सती के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें काट दिया। उस समय सती अर्थात् शक्ति के शरीर के टुकड़े जहाँ जहाँ गिरे वहीं वहीं एक एक पीठस्थान बना। उद्यान से श्रीपर्वत तक दक्षिण में और पश्चिम से पूर्व तक देवी के शाक्त पीठों का ताना बाना बुन गया था। इसी कामरूप में आकर देवी का भगप्रदेश गिरा था, अतः यही सर्वश्रेष्ठ तांत्रिक पीठ बना। स्त्रीदेश में भी कामरूप की भाँति घर घर योगिनी कौल मत फैला हुआ है। यहाँ वाममार्गी हैं जिनके अनेक संप्रदाय हैं। वे क्रम कहलाते हैं। महाराजक्रम, नीलक्रम, महानीलक्रम, गंधर्वक्रम और न जाने वे कितने हैं। उनमें अधिक भेद नहीं। किसी में प्रातः उठ कर

पहले योनिदर्शन करना होता है फिर दधि खाना होता है, किसी में दंत प्रक्षालन के उपरान्त स्त्री के गुह्यप्रदेश का एक रोम लेकर अपनी पगड़ी में लगाना होता है। प्राचीन मातृकाओं की यहाँ मुक्त उपासना है। पावर्त्य देवी देवता, भैरव और देवी के बौद्ध और अन्य रूप वैष्णवी, शांभवी और कौल मुद्राओं में यहाँ पूज्य हैं। हाकिनी, डाकिनी इत्यादि की पूजा तो है ही, यक्षपद्धति, राक्षसपद्धति, भूत-पिशाच पद्धति भी प्रचलित है। यहाँ कभी अत्यंज स्त्री, पुत्री, कन्या, रजस्वला, पतितस्तनी, विरूपा, मुक्तकेशी, कामार्त्ता किसी भी प्रकार की स्त्री की निंदा नहीं होती, क्योंकि वही शक्ति का स्वरूप है।

हाट है, बाजार है, शासन है, पुरुष उसका नियंता है, परन्तु वैसे शासिका स्त्री है, घर में स्त्री ही पूजा है, वही संपत्ति की स्वामिनी है और यह देश न जाने कब से ऐसा है। पश्चिम के पार्वत्य प्रदेश में (जौनसार बावर) बहुपति प्रथा है। परन्तु यहाँ विवाह होने पर भी साधना क्षेत्र में स्त्रीपुरुष में परस्पर बन्धन नहीं है। तंत्र इतने प्रचलित हैं कि इस भूमि के विषय में दूर दूर तक विख्यात है कि यहाँ की स्त्रियाँ जादूगरनी होती हैं जो पुरुषों को भेड़ा बना कर बाँध लेती हैं। यहाँ न देशकाल का नियम है, न भक्ष्याभक्ष्य का। शौच के नियम नहीं हैं यहाँ न मंत्रों पर निर्भर रहना पड़ता है। दिन हो या रात, या रात्रिशेष या साँझ, कभी भी माँस खाकर मदिरा पीकर स्त्री से संभोग करते हुए मंत्र का जप किया जा सकता है।

यह महानीलक्रम वाला नागरिक है। इसके हाथ में खड्ग है, सदा केश खुले रखता है, विजयाघूर्णित लोचन यह सदा मांस मदिरा का उल्लासी, सिंदूर का तिलक लगाता है और रात को घूमता है, जब यह शक्ति पूजा करता है। मुण्डमाला और शवासन इसे उतना ही प्रिय है जितना योनि चुम्बन। वेश्यारति में बड़ा कुशल है। पान सदा चबाता है।

यह महालीनक्रम वाला है। मानस स्नान तथा मानस शौच ही करता है। तर्पण भी मानस ही करता है। दाँत भी धोता है तो मानस

रूप से। इसके लिये सब काल शुभ है, अशुभ का प्रश्न ही नहीं। सभा में बैठ कर गद्यपद्यमयी वाणी बोलता है। कभी न नहा कर सदा भोजन करके देवी पूजा करता है। मास, मत्स्य, दधि, क्षौद्र रस, आसव और पान खाकर! इसके लिये न जप है, न नियम। बालों में तेल डाले रहता है। यह योनि का लिहन करके ही उसका चिंतन भी करता है।

दिव्यश्रीनक्रम वाला छिन्नमस्ता का उपासक है। त्रिपुण्ड में श्मशान भस्म का विन्दु लगाता है। शक्ति के मुख में मुख देकर सर्वकाल जप करता है।

और गोरखनाथ देख रहा है···गन्धर्वक्रम, भैरवक्रम, कमलाक्रम, धूम्रक्रम;···· ध्यान मंत्र गूँज रहे हैं···त्रिपुर भैरवी···चैतन्य भैरवी···· भुवनेश्वर भैरवी, कमलेश्वर भैरवी, संप्रदा भैरवी····कौलेश भैरवी, षट्कूटा भैरवी, नित्या भैरवी, रुद्रभैरवी, कुरुकुल्ला···पारमिता····धूमावती, बगलामुखी····मातङ्गी···· मातंगी····

कोई ध्यान कर रहा है—

शव पर वह बैठी है, लोहित हैं उसके वस्त्र, लाल हैं अलंकार, षोडशी है, युवती, पीन और उन्नत हैं उसके पयोधर, कपाल कार्त्रिका हस्तां परज्योतिः स्वरूपिणीम्····

ज्योतिः स्वरूपिणी····

'गुरुदेव!' लंग कहता है।

गोरख देखता है।

'उस ओर ही धूनी····'

'ठीक है।'

सहसा ही अनेक नए रक्षक आते हैं।

वे इन्हें घेर लेते हैं।

'कौन हो तुम?'

'योगी!'

'कौन मार्ग!'

'ब्रह्मचारी।'

'तुम नगर में नहीं रह सकते।'

'योगी की तो सारी पृथ्वी है।'

'होगी।'

'हमें अपने राजा के पास ले चलो।'

'राजा मत्स्येन्द्रनाथ उनसे नहीं मिलते जो पशुभाव के साधक हैं। महारानी विमला के वैधव्य ने जब उन्हें अत्यन्त कष्ट दिया तब यह योगिराज इधर आ निकले थे। उस समय मन की शान्ति देने आये थे योगिराज। परन्तु महारानी के अपूर्व पांडित्य ने योगी का हृदय जीत लिया। वे भी धर्म में दीक्षित हुए और उन्होंने महारानी से विवाह कर लिया। वे निरंतर साधना में तल्लीन रहते हैं।'

लंग कहता है : 'उनसे कहो कि उनसे मिलने उनके····'

गोरख इंगित से रोककर कहता हैं : 'तो निरन्तर साधना वे किस की करते हैं?'

पहले वे ललिता भैरवी अम्बा पापू के उपासक थे। किन्तु वे भ्रमित हो गये। शक्ति का रूप भूल कर वे शिवोपासना में लग गये···'

गोरखनाथ को विस्मय होता है। यहाँ यह लोग भी यह बातें करते हैं····ठीक ही कहा गया है तब तो····कामरूप में घर घर में योगिनी-कौल मत है····

'और अब?'

'अब वे शक्ति के वास्तविक रूप की उपासना करते हैं दिव्य भाव-क्रम में····

गोरख का सिर झुक जाता है।

तीनों लौट जाते हैं।

नगर के बाहर एकान्त वन है, सघन। पास में ही एक मढैया सी बनी है। उसके आगे एक बड़ा घना पेड़ है। वहाँ पत्थर के दो पतले खंभे से गड़े हैं। वे ज्यादा से ज्यादा १॥ फुट ऊँचे होंगे और दोनों हैं चार अंगुल दूर एक दूसरे से, और ऊपर आकर ऐसे खुल गये हैं ज़रा जैसे कमल का किनारे वाला दल खुलता है। उस जगह आदमी की

गर्दन टिकाई जा सकती है। वह नरबलि देने का स्थान है।

'गुरुदेव ! यहीं ?'

'नहीं। पहला काम नरबलि रोकना नहीं। पहला काम गुरुदेव को मुक्त करना है।'

क्या यह संभव हो सकेगा गुरुदेव !

आदिनाथ रक्षा करेंगे। महालंग ! गुरुदेव भी मनुष्य ही थे। जिस माया ने ब्रह्मा, विष्णु और स्वयं शिव को छल डाला, उसने यदि गुरुदेव को ही····पाप शांत हो ! पाप शांत हो। गुरु निंदा ! इसी मुख से !

'यह गुरु निंदा नहीं गुरुदेव ! ममता की वेदना है।'

'योगी में वेदना ! ममता ! वत्स !! दूसरा पाप !!'

'नहीं गुरुदेव ! अपनी ममता नहीं, लोक के संरक्षण की, करुणा है····दया है····

धूनी रमती है। काठ सुलगती है, धूँआ उठता है, पतला फिर घना, फिर ऊपर तक, फिर फैलता हुआ ! पहले लकड़ी पर सफेद सा धुँआ चिपट कर भागता है, उस जगह एक हरी नीली सी चमक दीखती है और फिर वह पीली सी छोरों पर लाल लाल सी लपलपाने लगती है····

रात बेचैनी में बीतती है····

'गुरुदेव !'

'वत्स !'

'आज इतनी व्याकुलता ?'

'सोचते हो योगी का धैर्य कहाँ गया ? सब कुछ छोड़ा था तब व्यथा हुई पर एक लक्ष्य सामने था। किन्तु अब ? आदिनाथ का मार्ग नष्ट हो जायेगा ? संसार से धर्म उठ जायेगा ? एकांत वन में तप और योग से लोक का क्या कल्याण होगा ! इतनी उन्नति किस लिये वत्स ! लोक के लिये। धर्म का प्रचार किस लिये ? लोक में धर्म की स्थापना के लिये। यही तो गुरु की आज्ञा थी। अन्यथा एकान्त में हमें क्या अभाव था ? कुछ नहीं। पूर्णब्रह्म का अहर्निश साक्षात्कार था। किंतु जीव बद्ध है। उसकी मुक्ति करनी थी न ? बिना गुरु के तो पृथ्वी पर प्रलय छा

जायेगा। सोचता हूँ। गृहस्थ माया के लिये व्याकुल रहता है। माया! बड़ी विकराल है वह वत्स। उसने गुरु को ही बाँध लिया और मुझे भी व्यथित कर दिया! महालंग! इस माया को काटना होगा। बीजस्वरूपिणी! तूने यह क्या किया!'

महालंग भी उदास हो जाता है।

दिन पर दिन बीतते जा रहे हैं।

गोरख प्रासाद में नहीं पहुँच पा रहा है। वहाँ द्वार-रक्षक हैं, प्रहरी हैं। सन्नद्ध। योगी से उन्हें घृणा है। वे इस मार्ग को पाप समझते हैं। वे शक्ति के उपासक हैं और अन्य मार्गों को अनुचित कहते हैं।

'महालंग! क्या हुआ?'

'गुरुदेव! मार्ग नहीं है।'

'एक बार यदि गुरुदेव के दर्शन होते!'

'वे भूल गये हैं सब गुरुदेव! परमगुरु सब भूल गये हैं।'

'कहीं वे माया तो नहीं दिखा रहे महालंग! कहीं वे अपने शिष्यों की परीक्षा तो नहीं ले रहे।'

महालंग उस गुरुभक्ति को देख कर श्रद्धा से सिर झुका कर सोचता है—इस गोरख को अपनी महानता का इतना भी ज्ञान नहीं कि यह कभी भी उसका अहङ्कार दिखाता हो।

और उधर प्रासाद में मत्स्येन्द्र की साधना निरन्तर चल रही है। सुन्दरियों की भीड़ में वे विभोर रहते हैं। वे सब शक्ति हैं। रानी स्वयं महामुद्रा है, भैरवी है। नग्न सुन्दरियाँ वहाँ कल्लोलिनी नदी जैसी बहती हैं। अगरुधूम महकता है। स्फटिक के दीपों में शिखाएँ सुगन्धित तेल में जलती हैं। राजा मत्स्येन्द्र का न्याय प्रसिद्ध है, परन्तु उनकी साधना और भी अधिक प्रसिद्ध है। रत्नपटों पर जब प्रतिच्छाया गिरती है तब अर्द्धनग्न सुन्दरियों का विभोर नृत्य होता है। रशनाओं के रणन से प्रासाद मुखरित रहता है। मत्स्येन्द्र स्वयं भैरव हैं, स्वयं वज्रधार हैं। शिव और बुद्ध वे स्वयं हैं। नीलमणियों सी पुतलियाँ वाली रानी विमला अपने पीनोन्नत स्तनों को उनके वक्ष पर दबा देती है। वे कहते हैं—

महारानी ! त्रिपुर सुन्दरी !

विमला अपने को भूल जाती है। सुवर्ण और मोतियों की मालाओं में दंतच्छद ढँक जाते हैं। मत्स्येन्द्र का भव्य गौर शरीर रेशमी दुकूलों के नीचे ऊर्जस्वित सा स्फुरित होने लगता है।

और सुख हैं दो पुत्र। मीनराम, परसराम। सुन्दर! तरुणाई के द्वार पर आ गये हैं, हिरनों के जोड़े से सुन्दर। देख कर ही नयन तृप्त होते हैं। पिता ने पुत्रों को सब विषयों का कराया उपदेश दिया है। सृष्टि, प्रलय का रहस्य बताया है सिद्धियों का ज्ञान कराया है। अभी स्वयं उन्होंने साधना प्रारम्भ नहीं की है। अब वे भी मत्स्येन्द्र की भाँति कानों में रत्नजटित सुवर्ण कुण्डल धारण करेंगे, जिन पर आँखें नहीं ठहरेंगी। कुल पूजन वे बता चुके हैं। सिद्धपंक्ति, योगिनीपंक्ति, चक्रध्यान इत्यादि और योगिनी संचार और देहस्थ सिद्धों की पूजा, पुत्रों को इतना ज्ञान वे दे चुके हैं। गोरे गोरे लड़के देख कर महारानी विमला की आँखें हर्ष से चमकती हैं। अब भी मत्स्येन्द्र सहज के उपासक हैं। वे वाह्याचार का विरोध करते हैं। पंचपवित्र का प्रयोग, वज्रीकरण और कुरुक्षेत्र तथा पीठों का ध्यान उन्हें निरन्तर रहता है। विमला रानी भी है, भैरवी भी। जीवन कितना मधुर है। दूध जैसा स्वच्छ, दही जैसा स्निग्ध, मदिरा जैसा मादक, माँस जैसा स्वादिष्ट, मैथुन जैसा सहजानंद इस योगिनी कौल मार्ग में ही तो है। शक्ति ही जब सृष्टि कर रही है तो वे क्यों शिवत्व की ओर चले गए थे! कुल में रहकर ही शिव को आनन्द है। अकुल श्रेष्ठ है अवश्य, परन्तु साधना के पथ में तो अकुल शव है। यदि शक्ति नहीं है तो वह ही कहाँ है? और ब्रह्मचर्य की ओर वे गये थे तब! क्यों? कुल और अकुल का अद्वय करने? कौलमार्ग भी तो अकुल साधन का ही मार्ग है? ब्रह्मचर्य में दमन है। भोग बिना योग कहां है?

राजा मत्स्येन्द्र प्रासाद में इस समय मदिरा पिए सो गये हैं। रानी विमला बाहर सखियों के साथ उपवन में आई है।

द्वार पर कोई पुकारता है: अलख निरंजन!

रानी साश्चर्य बाहर आती है। दण्डधर सादर झुक जाते हैं।

'भिक्षा दो माता !' गोरख कहता है।

'कौन हो तुम।' स्वर कठोर है।

रानी को शंका होती है। मत्स्येन्द्र भी पहले योगी थे। इसी रूप में आए थे। इस रूप के योगी यहाँ नहीं आते ! यह क्यों आया है? क्या कहीं यह वही तो नहीं। गोरख ! जिसके विषय में स्वामी कहा करते हैं?

पूछती है: 'योगी ! कौन हो तुम ?'

'अवधूत !'

'निवास !'

'सारी पृथ्वी।'

'मार्ग।'

'गुरु का उपदेश।'

'कौन है तुम्हारा गुरु ?'

'आदिनाथ !'

'आदिनाथ ! शिव !'

'हाँ माता।'

'भिक्षा दो इसे !'

दासी भिक्षा लाती है।

'यह नहीं माता।'

'तो ?'

'मेरी याचना और ही थी।'

'योगी भी याचना करते हैं? सन्तोष ही धर्म है योगी।'

'माता। धर्म के लिये, अपने लिए नहीं।'

'क्या चाहते हो ?'

'दोगी माता ?'

'पहले बताओ।'

'आज्ञा। माता को तो कुछ भी अदेय नहीं।'

रानी चौंकती है। कहती है: 'जो प्राप्त हुआ है वही लेकर चले

कितना मधुर और स्निग्ध निकला है मुख योगी का। कितना सुंदर ! दोनों अवाक् देखते हैं।

'वत्स ! रेशमी वस्त्र हाट से ले आओ।'

जब लंग लौटता है तब गोरख अपने को नागरिक बनाता है। महालंग की आँखों में आँसू आजाते हैं।

'रो नहीं महालंग ! धर्म के लिये सब कुछ करना होगा। आज या तो गोरख अपने गुरु को लेकर लौटेगा या नहीं लौटेगा।'

'गुरुदेव !' लंग चरणों पर लोट जाता है।

'हम क्या करेंगे गुरुदेव !' महालंग पुकार उठता है।

'धूनी न बुझने देना वत्स ! गोरख रहे या न रहे।'

'रानी प्राण हर लेगी गुरुदेव ! वह बाघिन है।'

'मैंने बाघिन के दाँत तोड़े हैं महालंग ! भीतर की बाघिन उससे भी बड़ी है।'

'परंतु सहजानंद प्राप्त साक्षात् परमशिव की निर्विकल्प समाधि प्राप्त करने के उपरांत कैसी प्रतिहिंसा योगीराज ! यह तो लोक है जहाँ लोग कर्मानुसार फल भोगते हैं। उन्हें भोगने दीजिये गुरुदेव ! अपनी समाधि क्यों भंग की जाये !'

'वत्स ! समाधि ! आत्म सुख अंतिम सुख है, परंतु किसलिये। बद्ध प्राणी को छुड़ाने के लिये। योगी काठ को एक बार जब अग्नि का स्पर्श करा देता है तब उसे बुझने नहीं देता। काठ लाकर अग्नि जलाता है, परंतु जब अग्नि धधक उठती है तब वह पूर्ण स्वरूपिणी निरंतर भस्म बनाती रहती है। उसे बुझने न देना, उसके जलने के साथ दिन-रात जागना ही योगी का धर्म है। धर्म की स्थापना के लिये मत्स्येन्द्र को लाना होगा अन्यथा माता सामदेई का दान व्यर्थ हो जायेगा। गोदावरी पर जो मार्ग बदल कर आदिनाथ की शरण में आये हैं, वे सब फिर अंधकार में लौट जायेंगे। एकांत वन गह्वर में योगी गोरख निर्विकल्प समाधि लगा सकता है। उसे मत्स्येन्द्र से व्यक्तिगत मोह नहीं। धर्म की तृष्णा उसमें बाकी है, क्योंकि उसी से लोक

को कल्याण मिलेगा। उसके लिये जो भी बाधा आयेगी उसे पार करना होगा वत्स ! उसके लिये लज्जा नहीं है । आज योगी गोरख वह करेगा जिसे सुन कर लोक आश्चर्य्य-चकित रह जायेगा । महालंग ! योगी गोरख ने स्त्री को तुच्छ और घृणित कहा हैं योगी के जीवन के लिये। किंतु आज योगी स्त्री का दास होगया हैं और अकुल को भूल कर कुल में सीमित होगया हैं। स्त्री इतनी बड़ी शक्ति है ?? मैं नहीं जानता। परंतु यदि वह इतनी प्रबल है तो परमशिव जाने कि आद्या का रूप धारण करके ही मैं प्रासाद में घुसूँगा और...

'गुरुदेव !' दोनों कांप उठते हैं। 'पकड़े जाने पर मृत्युदण्ड होगा।'

'गोरख अमर है वत्स ! उसने अमृत रस का आस्वादन कर लिया। जीवन और मृत्यु उसके लिये समान हैं। वह मरजीवा बन कर जिया हैं जिसने काल को झुकाया है ! उसने सृष्टि के बंधनों को काट कर साक्षात् ज्योति रूप में चेतन का आनंद लिया है। उसके लिये कोई भय नहीं।'

'आदेश !' महालंग स्फुरित होकर पूछता है।

'अग्नि बुझने न देना वत्स ! गोरख न रहे तो इसे लोक में धधकाते रहना। इसके अतिरिक्त संसार और आत्मा का कहीं कल्याण नहीं है। इस लोक की मर्यादा है। उसे जीवित रखने को मत्स्येन्द्र की काया को लाना होगा और उसमें कुण्डलिनी को फिर जगा कर ऊर्ध्वरेता बना कर उस शरीर को फिर चैतन्य करना होगा। अलख निरंजन !!'

योगी चला गया है।

संध्या होगई है। पथों पर नागरिक और नागरिकाएं घूम रहे हैं। वृक्षों और चैत्यों के दीप अब अंधकार में जल उठे हैं। कहीं कोई गारहा है, कहीं शक्ति पूजा का प्रसाधन प्रारंभ होगया है।

नर्त्तकी कलिंगा अपने साथ अन्य वेश्याएं लिये प्रासाद के द्वार पर उपस्थित है। उसके साथ एक अत्यंत सुंदर युवती भी आई है।

कलिंगा पूछती है : 'तू कौन है सुंदरी।'

सुंदरी लजा जाती है। कहती है : 'स्वामिनी ! तुम्हारी दासी हूँ।'

'नृत्य गीत जानती है !'

'माता से यही सीखा है ।'

कलिंगा कहती है—'बड़ी रूपवती है तू । कहीं मेरा अधिकार तो न छीन लेगी ?'

'स्वामिनी ! दासी बन कर चरणों में अलता लगाऊँगी ।'

द्वार खुलता है । सब स्त्रियाँ भीतर प्रासाद में चली जाती हैं । भारी नितंबों पर किंकिणियाँ बज रही हैं । रेशमी वस्त्रों में से यौवन का उन्माद पग पग पर मंथर गति से ठुमक रहा है । पीनोन्नत स्तनों के भार से वे स्त्रियाँ झुक गई हैं । कानों पर फूल झूल रहे हैं, जिनके पराग से कपोलों पर सुनहली छाया आगई है । वे हँसती हैं तो प्रासाद के स्निग्ध पाषाण कपोलों की भाँति स्वरों के अधरों को छू लेने को लालायित हो जाते हैं । माँसल पगों से आहत प्रासाद की भूमि अलसाई वधू सी सकुचा जाती है । काकातूआ सोने के चक्र पर बोलता है । स्त्रियाँ उससे कौतूहल से उपहास करती हैं । वह बोलता रहता है तो प्रतिस्पर्धा से भीतर की वापी से निकल कर हंस फ्रेन्कार कर उठता है । फिर झनझनाता हास्य झंकारता सा वीणा के तारों पर मचलने लगता है, जिससे मानों प्राणों का सम्मोहन बहने लगता है ।

कलिंगा पूछती है : 'अरी नवेली ! तेरा नाम क्या है ?'

नई स्त्री कहती है—'छद्मा !'

'उई माँ ! कैसा मनोहर !'

'कलिंगे ! कलिंगे !'

'आई महादेवी !'

अच्छी तो है ।'

'महादेवी का प्रसाद है ।'

सुवर्ण का सिंहासन है । चीन के रेशमी वस्त्र पड़े हैं उस पर । दासी मदिरा ढाल रही है । रत्नचसक में लोहितवर्णी मदिरा । फेन उफनते हैं । महादेवी जाकर राजा मत्स्येन्द्र के समीप बैठ जाती है । दीपों के प्रकाश में महादेवी के सुडौल स्तन पारदर्शी रेशम में से स्पष्ट दीख रहे हैं ।

सुवर्णकंकणों पर हीरक जटित हैं। कंधों के पीछे बंग की मलमल लटकी है। कितनी महीन है वह। सूग्रर का मांस बहुत स्वादिष्ट है। मत्स्य भी अच्छा है। यह पक्षी भी अच्छे मसालेदार हैं। चने कैसे मसालेदार हैं!

मृदंग बजाने वाला पान चवाता, आँखों में काजर डाले है। पूछता है: 'कलिंगे। तेरी जय हो!'

'कैसे रे रसभीने!'

'यह सुंदरी कौन है। इंद्रधनुष निचोड़ लिया है जैसे!'

'छद्मा!'

अवगुण्ठन की आधी छिपी भंगिमा।

'एक चषक पिलादे सुंदरी! अपने हाथों से!'

'रहने दे रसभीने! नवेली है।'

'तुझे मेरी सौगंध!'

छद्मा और लजाती है।'

'पिलादे री! रसभीना बड़ा मीठा है।'

छद्मा पिलाती है। चषक एक ...

'और ढाल सुंदरी.... मुझे आज इंद्रासन मिल गया है....'

वह और ढालती है....

रसभीना लेट जाता है विभोर सा....

नृत्य प्रारंभ होता है।

नूपुर बजता है।

माँस खण्ड उठाकर मत्स्येन्द्र मुख में रखते हैं....

और नूपुर का स्वर फैलता है....

कलिंगा!

विमला हँसती है। मत्स्येन्द्र विभोर हैं। विमला के नयनों में अपार गर्व है।

मृदङ्ग क्यों नहीं बजा अभी। उसकी थाप के बिना कलिंगा है

का नृत्य ऐसे रुक जाता है, जैसे समुद्र पर झूमता समीरण अवरुद्ध हो जाता हो !

मृदङ्ग !!

कौन बजायेगा····

थाप पड़ी····

कौन !

छद्मा !

जीती रह···

कुशल हाथ हैं, कुशल चरण हैं । मादक विस्फुरण से कुट्टिम पर बिजली सी कौंधने लगती है, और मृदङ्ग मेघनाद सा पीछे दौड़ता जा रहा है···

कलिंगा की अंग भंगिमा में कामदेव स्वयं अपने धनुष बार बार तोड़ तोड़ कर फेंक रहा है, अपरूप छवियों के समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन करने को चंचल हो रहे हैं। गमकता नूपुर सृष्टि की संक्षुब्ध वासना का दिगंतनादी प्रहार बन कर स्वरों की सहस्र मोहिनी को विकीर्ण किये दे रहा है।

और बज रहा है मृदंग····

राजा मत्स्येन्द्र पूछते हैं : 'विमले ! मृदङ्गवादिनी कौन है ?'

'नयी नर्त्तकी है स्वामी ! कलिंगा की सखी।'

नृत्य का वेग बढ़ता जा रहा है और मृदङ्ग की गूंज भी उस वेग को संभाले जा रही है जैसे पार्वत्य प्रदेश की उच्छ्वाँवल नदी को तीर के पाषण रोके रोके घिसे जा रहे हों। स्तब्ध हैं प्रासादभूमि। केवल नाद, केवल अखण्ड रूप, यौवन और मादकता । मदिरा की गन्ध पर अब अगरुधूम लोट रहा हैं । उज्जयिनी के कलाबत्तू पर प्रकाश की किरणें झलमला रही हैं। नृत्य की मुखरता अब साकार सौन्दर्य बन गई है, आज कलिंगा नहीं नाच रही, मृदङ्ग का स्वर नचा रहा है। यौवन की गरिमा ही यौवन की सुकुमारता से खेलने लगी है।

फिर चरणों की झुनन और फिर झनझनाहट····और फिर उद्बुद्ध

मृदंग घोष—बढ़ता बढ़ता, वेगवान, वेगवान····जैसे समुद्र मंथन का घोष जिस पर अमृतघट सी आलोकिनी बन कर नाच रही है कलिंगा····

'साधु साधु !! मत्स्येन्द्र कह उठते हैं····

नृत्य में द्विगुणित स्फूर्ति आती है। आज मृदंग नचा रहा है कलिंगा को····

और ध्वनि आती है, स्पष्ट !

यह क्या है ?

चौंकते हैं मत्स्येन्द्र !

विह्वल !

व्याकुल !

नींद में से अचानक जाग उठे से देख उठते हैं····

यह कौन है····

जाग मछिन्द्र···

गोरख आया····

जाग मछिन्द्र····

गोरख आया····

'रोक दो यह नृत्य !' पुकार उठते हैं मत्स्येन्द्र !

नृत्य थम जाता है। जैसे आद्या थम गई। जैसे सन्नाटे ने परमशिव की भाँति उस संगीतवाद की शक्ति को कवलीकृत कर लिया।

'मृदंग नादिनी !'

'देव !'

'यह तूने क्या बजाया था !'

'देव ! नृत्य था ! सृष्टि का नृत्य ! और शक्ति के नृत्य में चेतन बोलने लगा था। निद्रा छूट गई। क्षमा करें देव !'

'कौन ?'

'गोरख !!'

'योगी छद्मा बना !! किसलिए ! किसलिए यह तृष्णा !'

'गुरुदेव !' आर्त्तस्वर में पुकार उठता है गोरख और गिर जाता

है मत्स्येन्द्र के चरणों पर—'मैं आ गया हूँ गुरुदेव ! गोरख आ गया है।'

कृत्रिम स्तन गिर पड़े हैं। कितना सुन्दर पुरुष है। कलिंगा को रोष नहीं। जी भर कर देख रही है। विमला की आँखें फट गई हैं, आश्चर्य्य, भय, घृणा और प्रतिहिंसा से! और देख रहे हैं मत्स्येन्द्र।

'गोरख वत्स!'

'गुरुदेव! अकुल बुला रहा है। उसी ने मुझे भेजा है गुरुदेव!! आपने जो धूनी जलाई है वह स्वयं आप ही बुझा रहे हैं।'

'गोरख!' मत्स्येन्द्र कहते हैं—'किसे बुझा रहा हूँ मैं गोरख! कुल और अकुल का क्या मैंने सामरस्य नहीं किया? तू अविद्या के कारण स्त्री को अलग करके क्यों देख रहा है? जब सब कुछ वही है तो फिर उसमें भेद क्यों?'

गोरख ने आभूषण उतार कर फेंक दिए हैं। वस्त्र भी। केवल एक कच्छ पहने हैं। सुती हुई देह। एक एक पेशी दीख रही है।

'गुरुदेव! जीव के पाँच बन्धन हैं। अनात्मा में आत्मबुद्धि, आत्मा में अनात्म बुद्धि, जीवों में परस्पर भेद ज्ञान; ईश्वर और आत्मा में भेद बुद्धि और चैतन्य को अपने से अलग समझने की बुद्धि। तभी वह जन्म मरण के चक्र में घूम रहा है। यह जो साधनाएँ हैं, यह सब बाहर नहीं भीतर ही हैं। आप ही ने कहा था गुरुदेव! आपने शाक्त परम्परा को निचोड़ कर मनुष्य की मुक्ति का मार्ग देखा था। आपके गुरु भाई जालंधरनाथ इन अनात्मवादियों के जिस जाल में फँसे, आप भी घूम कर उसी में आ गये! अब यह मानस सत्य बाह्य सत्य क्यों हो गया? साधना की ऊँची सीढ़ी से आप नीचे कैसे उतर आये! गुरुदेव! आपने कुछ भी किया किन्तु यदि आपने कुण्डलिनी को पूर्णतः सिद्ध किया होता तो क्या आत्म-विकास के लिए इतने नीचे गिरना पड़ता? जो भीतर है, उसे बाहर क्यों खोजे योगी? योगी गृहस्थ बने! भूल जाए आत्मतत्त्व को। माता को वामा बनाले और साथ ही उसे अपनी माता भी कहे। यह तो साधारण व्यक्ति का काम है गुरुदेव!'

मत्स्येन्द्र शिथिल हो जाते हैं।

रानी विमला चिल्लाती है : 'दण्डधर ! इस धूर्त को पकड़कर इसका सिर काट लो !'

'काट लो माँ।' गोरख कहता है—'किन्तु उससे क्या गुरु मत्स्येन्द्र का पतन छिप जाएगा ? आदिनाथ का बताया उपदेश तो सिद्ध होकर रहेगा। योगमार्ग ही कल्याण का मार्ग है।'

'स्त्री विहीन मार्ग !'

'माँ ! स्त्री योगी के लिए नहीं। यह व्यभिचार को न्याय्य बनाना है। कायायोग में यह दुष्कर्म लोक में पाप को प्रश्रय देते हैं।

मत्स्येन्द्र व्याकुल से देखते हैं, और कहते हैं : क्या कहता है गोरख। स्त्री शक्ति है।'

गोरख कहता है : 'स्त्री के संग सोना यम का भोग करना है। उसके साथ तो पानी भी नहीं पीना चाहिए। हे मत्स्येन्द्र ! इसी प्रकार अमरता प्राप्त हो सकती है।'

'अमरता !' रानी कहती है।' मूर्ख तू नहीं मरेगा !'

'मरूँगा माँ ! पर मेरी आत्मा नहीं, देह मरेगी।'

'देह का धर्म क्या है ?'

'योगी के लिए संयम !'

'गोरख !' मत्स्येन्द्र का स्वर भर्रा जाता है।

गोरख कहता हैं : 'हे गुरु ! लोभ और माया को छोड़ दो। आत्मा का परिचय रखो जिससे यह सुन्दर काया नष्ट न हो जाये। विद्यानगर से आए कण्हपा ने मुझे आपके बारे में बताया था। यह सब जो हुआ है आपके भोलेपन के कारण ही। आपने अमृत रस को बाघनी की गोद में खो दिया। घुंघुरू बजने के स्वर से ताल मिलाकर नाचते हुए आपने माया के जाल में अपनी सारी आध्यात्मिक कमाई खोदी है।

'रस तो बह गया, तत्त्व चला गया और रस गया तो क्या, तत्त्व फिर भी बचा है। बाहरी बातें छोड़िये। सारतत्त्व ग्रहण करिए। यही योग मत है।'

रानी के पुत्र आ गए हैं।

गोरख देखता है।

मत्स्येन्द्र उन्हें देखकर अपार वेदना से भर उठे हैं।

'इन्हें भी त्याग देंगे स्वामी!' रानी पूछती है।

मत्स्येन्द्र हाथों में मुँह छिपा लेते हैं।

'योगी!' गोरख कहता है—'उदास योग लेकर राजा जनक ने मिथिला में सबकुछ के बीच में रह कर भी, सबकुछ को अलग रखा था। क्या आप इतना भी न कर सकेंगे? क्या लोक में यह ब्राह्मणदंभ बना रहेगा? क्या जातियों की घृणा बनी रहेगी। क्या यह व्यभिचार बना रहेगा? क्या यह कुत्सित उपासनाएं बनी रहेंगी? क्या यह नास्तिक छद्म जीवित रहेंगे? क्या योग के नाम पर अंधविश्वास बने ही रहेंगे? मैं पूछता हूँ उत्तर दें गुरुदेव!'

रानी कहती है: 'यह अपना कर्मयोग है बालक! इसे तू रोक लेगा।'

गोरख कहता है: 'हे मनसा! अपना व्यापार बाँध लो। प्राण पुरुष उत्पन्न हो गया है। जागा हुआ योगी अध्यात्म में लग गया है। इसे शरीर रूपी नगर में प्रवेश करना है। २१६०० बार यह श्वास जप करती है—अजपा जाप निरंतर चल रहा है। तीन नाड़ियों में पवन बह रहा है। षट् कमलों में ब्रह्मचारी बसता है। हंस पवन फूल पर बैठा है। नौ सौ नदियों की तरह यह नाडियाँ पानी भरती हैं। यह नीचे बहती धारा फिर ऊपर चढ़ाइये! सूर्यचन्द्र का लोप होते ही वाह्य संसार अंधकार में खो जायेगा! नये प्राकार और सिंह द्वार खुल कर प्रगट होंगे।'

मत्स्येन्द्र देखते हैं जैसे कुछ खोज रहे हैं।

गोरख कहता है: 'यदि योगी ही अपने सुखविलास में भूलकर लोक की रक्षा नहीं करेगा तो क्या होगा गुरुदेव! बाहर निकलिये। शासन करने को तो बहुत हैं। ज्ञान कौन फैलायेगा! धर्म की रक्षा कौन करेगा। इन विभिन्न धर्मों की लड़ाई में मनुष्य को एक वह भूमि कौन दिखायेगा जिस पर आकर परस्पर घृणा, कलुष, पाप सब मिट जाते हैं।'

रानी चौंकती है। मत्स्येन्द्र खड़े हो गये हैं फिर।

गोरख कहता है—

'मेरा वैरागी जोगी मन तो रात दिन भोग में लगा रहता है। कभी भी जोगिन नहीं छोड़ता। मान सरोवर में मनसा झूलती आती है और गगन मण्डल में मढ़ी बना लेती है। मेरे सास ससुर मेरी नाभि में बसते हैं। मैं बह्मस्थान का निवासी हूँ। मेरी जोगन कुण्डलिनी है। इड़ा पिंगला ने उससे मुझे सुषुम्ना में मिलाया। नाभि की सुन्दरी ही शक्ति है गुरुदेव! वही तो सृष्टि को रचती है? उसे जगाइये गुरुदेव!'

रानी विह्वल सी रो उठती है। प्रासाद में हलचल मच रही है, परन्तु सब टँगे हुए से स्तब्ध खड़े है। वह कहती है: 'स्वामी! इसे निकाल दीजिये····

किन्तु मत्स्येन्द्र बोल नहीं पाते।

रानी अपनी अंगूठी का ढक्कन खोलती है। विशाल चपटा हीरा सरक जाता है। उसका विष खाने को उठाती है वह हाथ। गोरख हाथ हिला कर विष गिरा कर कहता हैं: आद्या? फिर सती न बनो, अन्यथा शिव को फिर शवभार ढोना पड़ेगा और फिर ब्रह्माण्ड में इनका दाह धधक उठेगा।'

रानी असमर्थ सी मत्स्येन्द्र के चरण पकड़ कर फूट फूट कर रोने लगती है। मत्स्येन्द्र का सिर फिर उठ गया हैं, गम्भीर हैं नयन।

गोरख कहता हैं:

'ज्ञान बिना बीज जन्मा है, निराधार है। न मूल है, न पत्ते। वह तो बंध्या का बालक है। न वह शून्य है न स्थूल, अचिह्न है, पूजाहीन। ध्वनि के बिना बजता है अनाहत नाद। वेदों के पंडित उसे नहीं समझते। उसी का साक्षात्कार करना होगा।

मत्स्येन्द्र को याद आ रहा है।

'गुरुदेव! सिद्धि प्राप्त करके आपने कहा था—चलो गोरख! लोक को जगाओ। किसे जगाया है आपने। यहाँ तो गृहस्थी हैं। अपने घर के बाहर सर्वात्म की, बद्ध पशु की यहाँ क्या चिंता हो रही है।'

कलिंगा स्तब्ध है। रानी का रुदन सुनाई दे रहा है।

गोरख कहता है :

३६० हड्डियों की थेगलियों का कंथा है यह शरीर।

२१६०० साँसें इसमें तागे हैं। इसमें ७२ नाड़ियाँ हैं, ८६ सुइयाँ हैं, और ५२ वीर चेतन इसे सीने वाला दर्जी है। यही निरंजन सिद्धि की भूमिका है। सब मरते हैं। मृत्यु के लिए क्या जीवन को प्यासे की तरह पीना होगा, कुत्ते की तरह चाट चाट कर? नीले आकाश के नीचे पर्वत के शिखर पर जलाते हैं योगी धूनी! वहाँ से उठकर उनका शृंगी निनाद आक्षितिज गूँजता है। मनुष्य के तप और उत्थान को देखकर लोक में प्रेरणा होती है, उठने की! गुरुदेव! योगी को देखकर भूले हुए मनुष्य में जागरण आता है, अपने स्वार्थों में भूले हुए जीव को पता चलता है कि मनुष्य कहाँ तक, किस ऊँचाई तक उठ सकता है, हो सकता है वह स्वयं परमशिव! वह शिवत्व, जहाँ पाप नहीं। पुण्य का अहंकार नहीं। क्या वह सब छोड़ देंगे गुरुदेव! क्या लोक का मंगल न करके आप इस परिवार में ही सब भूले रह जायेंगे? इसी के लिये सब किया था? यही था क्या जीवन का उद्देश्य! योनि मार्ग में ही बँधे रह जायेंगे? म्लेच्छ, यवन, और ब्राह्मणों, बौद्धों और जैनों और इन संप्रदायवादियों का अंत कहाँ होगा। धर्म के नाम पर यह लोग लोक में अंधकार भरते रहेंगे? और आप उन्हें सहायता देंगे। इस सबको दूर करने का ही तो स्वप्न था न गुरुदेव!

मत्स्येन्द्र के नेत्रों में चमकसी आरही है। लगता है बहुत कुछ याद आरहा है।

गोरख कहता है :

'भग राक्षसनी है, राक्षसनी। उसने बिना दाँतों के सारे जगत को चबा डाला है। ज्ञानी ही उससे बच पाता है। लोक उसमें खोरहा है। तभी बाघिन माया उसे दबोचे है। फाड़ फाड़ कर खाती है उसे। वह यमराज की बगल में खड़ी दहाड़ती है। वह रूपसी और कुरूपा दोनों में रहती है। गुरुदेव! बड़ी भोली लगती है, यही है माता, यही है वह

शक्ति ! उसे आप विषय का केन्द्र बना कर योगी का सर्वस्व भूले हुए हैं। गुरुदेव ! सच्चे गुरु की खोज करिये !'

'सच्चा गुरु !' मत्स्येन्द्र के होठों से फूटता है।

रानी शायद रो रोकर मूर्च्छित होगई है। सखियाँ दासियाँ उसे सँभाल रही हैं और गोरख कहता जारहा है :

'वह स्वप्न था जहाँ आदर्श साधक का रूप लोक में स्थापित होगा! इसीलिये तो आपने साक्षात् महादेव का रूप धारण किया था। जीवित ही भस्म लपेट ली थी, कि मैं जीवन का अंत जानता हूँ। यह ममता, अहंकार, स्वार्थ सब अंत में भस्म बन जायेंगे—अतः यह मेरा सत्य नहीं है। मैं अपने को छोटा नहीं, बड़ा बनाऊँगा।'

रानी फिर चैतन्य होकर बैठती हैं।

गोरख कह रहा है :

'चलिये गुरुदेव ! मोहगुफा में से सिंह विक्रम से निकल कर भवारण्य में दहाड़ उठिये। सिद्ध कण्हपा का व्यंग्य लोक पर छाये जारहा है। कुण्डलिनी को फिर सहस्रार तक पहूँचा कर आत्म शक्ति और शुद्धि प्राप्त कीजिये। और फिर चलिये। घर घर अलख जगा कर कहना होगा कि स्त्री माया है। वह केवल जननी है। संभोग केवल सिसृक्षा है। सृष्टि करने के लिये ही संभोग है। उसको आनंद समझना भूल है। आनंद पिण्ड में है। इस पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड समाया है गुरुदेव ! क्या इस पिण्ड की महत्ता इसकी विराट शक्ति को आप नहीं जगायेंगे ? दूध पिला कर पालने वाली माता से आप पशुत्व से आचरण करेंगे ? संभोग को साधना बना कर आप धूर्तों और नीचों को यह पाप फैलाने देंगे।'

'गोरख !' रानी विह्वल सी उठ कर कहती है—'क्या क्या गोरख ! तो यह धर्म नहीं ?'

'धर्म ! माता ? धर्म लोक रक्षक है। आत्मसिद्धि का अन्तः लोक का परिष्कार है अन्यथा मुझे गुरु को जगाने आने की क्या आवश्यकता थी। गुरु लोक को भूल गये, इसीलिये आया हूँ माता। माता हो तुम। संभोग

तुम्हारे जीवन का अन्त नहीं माता। तुम शक्ति हो। तुम निर्बल नहीं हो। परन्तु इस पुरुष को योनिदास बनाना ही क्या तुम्हारा मातृत्व है। क्या पुरुष और ऊपर नहीं उठ सकता? योगी क्यों ऐसा आचरण करे!'

रानी कहती है: 'स्वामी! जिसे धर्म समझती थी, वह स्वार्थ बन गया! जिसे आनन्द कहते थे वह मोह बन गया। सचमुच! योगी का गत्य यदि आत्म परिष्कार मात्र है तो गोरख क्यों आया है? क्यों आया है अपना सहजानन्द छोड़कर? गोरख! फिर परिवार की ममता कहाँ रहेगी। लोक किस संबल से चलेगा। यदि स्त्री गर्भ धारण न करेगी तो लोक चलेगा कैसे?'

'सब एक से नहीं होंगे माता! सब ही इस उच्च ज्ञान के अधिकारी तो नहीं हो जायेंगे। जो जागेंगे कि उठें, उन्हें ही उठना होगा, सबको उठाने के लिये, एक आदर्श उनके सामने रखने के लिये। इसीलिये आया हूँ माता! इसीलिये गुरुदेव को जगाने आया हूँ। मुझे यदि अहङ्कार यहाँ लाया है तो गुरु के चरणों की शपथ, गुरु-निंदा करके मैं शिष्यवर्ग एकत्र करके स्वयं पंथ चला सकता था, लोक को चमत्कार और सिद्धियों से ठग कर पुज सकता था। इसमें मेरा सम्मान बढ़ जाता, लोक ऐसे ही, जयजयकार करता, जैसे कण्हपा का करता है। किन्तु वह तो मेरा लक्ष्य नहीं। योगी को यश क्यों चाहिये? उसे तो किसी प्रकार की भी आत्म-तृष्णा क्यों हो। मेरे गुरु तो मत्स्येन्द्र हैं, जिन्होंने अनंगवज्र को गोरख बनाया था। उन्होंने ही मुझे मार्ग दिखाया था। फिर किस कारण से वे अपने ही मार्ग से भटक गये हैं? तुम्हारे ही कारण न माता?'

'मेरे कारण!' रानी कहती है—'गोरख तुम भूलते हो। स्त्री फँसाती नहीं। पुरुष स्वयं फँसता है। परन्तु तुम जिसे फँसना कहते हो योगी, स्त्री के लिये वही सहज जीवन है, परन्तु यदि तुम इसे निचला स्तर कहते हो और ममता से भी ऊपर उठना चाहते हो, तो ले जाओ अपने गुरु को, जो इस समय आत्म-विश्वास खोकर खड़े हैं। रानी विमला ऐसे पुरुष के साथ नहीं रह सकती, जो उसके सान्निध्य को पाप समझे। रानी

विमला ऐसा बंधन बन कर नहीं रहना चाहती, जिसमें पुरुष पशु बन कर उससे बँधा रहे, मन में उससे डरता रहे, परन्तु आबद्ध सा, पीड़ित सा, कुत्ते सा जीभ लटकाए भटकता सा, पीछे-पीछे डोले। रानी विमला सिंहनी है गोरख! वह पुरुष को अपना स्वामी नहीं बना सकती। देती हूँ तुम्हें यह दान! ले जाओ! जिसे तुम सत्य समझते हो. यदि वही सत्य है तो ले जाओ अपने गुरु को। यदि तुम्हारे कल्याण-मार्ग में स्त्री केवल संभोग से बच्चा पैदा करने का यंत्र है, और उसका सारा सौंदर्य तुम्हें गिराने वाला है, तो धिक्कार है इस सौंदर्य को। यह सौंदर्य है ही कहाँ? कौन जाने वासना की जघन्यता में ही पुरुष को यह माँसपिण्ड सौन्दर्य लगता है। गुरु को ले जाओ, और ले जाओ इन दोनों पुत्रों को। यह क्यों हैं? इस पुरुष की ही देन हैं न? मैं तो इन्हें और कहीं से नहीं लाई। स्त्रीदेश में स्त्री ही का शासन है गोरख! क्योंकि यहाँ स्त्री ने कभी पुरुष के उस दंभ को स्वीकार नहीं किया जिसमें वह स्त्री को पाप समझे और स्त्री फिर भी उसके पीछे घूमते रहो। स्त्री तो गंगा है जो हिमालय से गिरती है, लोक का सिंचन करने को। और हिमालय क्या है? स्थाणु! पुरुष!! इन दोनों पुत्रों को भी देती हूँ, पति को भी देती हूँ... मैं इनके बिना भी पूर्ण हूँ।

'माता!' गोरख पुकार उठता है—'आद्या! माता सामदेई। माता विमला! शक्ति! आद्या तुम ही सृष्टि करती हो। सचमुच शिव तुम्हारे बिना शव है। तुम धन्य हो। तुमने लोक के लिये अपना सर्वस्व त्याग दिया! गुरुदेव! चलिये! चेतन के जागते ही पर्दा अपने आप उठ गया!'

मत्स्येन्द्र देखते हैं। और कहते हैं: 'कहाँ चलूँ वत्स! कहाँ जा सकूँगा मैं। लोक हँसेगा! गुरु ही पथ-भ्रष्ट हो गया।'

रानी कहती है: 'परन्तु उस दंभ का निर्वाह भी तो नहीं होगा! एक अहं के लिये क्या आप अब मुझे कृत्रिम स्नेह दिखा कर बहकाते रहेंगे!'

'वज्र-हृदय हो गई हो तुम देवी!' मत्स्येन्द्र कहते हैं: 'तुम भी मुझे

पतित समझती हो ? किन्तु मत्स्येन्द्र इस पाप का प्रायश्चित करेगा। गोरख ! मुझे मार्ग दिखा ! आज से तू मेरा गुरु है। आदिनाथ के मत का वही निरवलंब जलती धूमहीन प्रज्वलित अग्निशिखा से देदीप्यमान मार्ग.... पथ दिखा मुझे गोरख.... मेरी नींद टूट गई है....'

मत्स्येन्द्र आगे बढ़ते हैं, वे गोरख के चरणों को पकड़ते हैं...

गोरख पीछे हटता है....

'गुरुदेव ! पृथ्वी उलट जायेगी....'

'उलट जाने दो गुरु गोरख ! बालक मत्स्येन्द्र की बाँह पकड़ लो....'

गोरख उठाता है और कहता है : 'गुरुदेव ! माँ ने भीख दी है न ? किसलिए ! लोक के लिए ! गोरख से बढ़ कर भाग्यवान कौन है ? इतनी बड़ी गुरुदक्षिणा देनी थी मुझे ! उठिये चलिये गुरुदेव ! इतनी बड़ी परीक्षा लेनी थी मेरी ही....'

रानी देखती है। मुख पर असीम स्नेह आता है। इतना विशाल हृदय !

गोरख चरणों पर झुककर कहता है : 'माता ! आशीष दो। गोरख बालक को आशीष दो माता।'

रानी की आँखों के आँसू ढुलक कर गोरख के मस्तक पर गिरते हैं....

परिशिष्ट—१

इसके बाद गुरु मच्छिन्द्र लौट आये और गोरख ने कौल धर्म में ब्रह्मचर्य की स्थापना की। गुरु मत्स्येन्द्र ने कौलज्ञान निर्णय के बाद अकुलवीरतंत्र लिखा जिसमें हमें गोरखनाथी साधना के स्वर मिलते हैं। यद्यपि गोरखनाथ को ही आदिनाथ के मार्ग का सच्चा प्रवर्त्तक मानना चाहिये, परन्तु इतिहास में यह एक आदर्श है कि उस शिष्य ने गुरु को फिर जाग्रत करके यह प्रमाणित किया कि उसका ध्येय स्वयं गुरुत्व प्राप्त करना नहीं था। उसका उद्देश्य था उस सत्य को प्रतिपादित करना जिसे वह सर्वश्रेष्ठ समझता था। गोरख के इस व्यक्तिपक्ष को देखे बिना उसके योगपक्ष का सामाजिक पक्ष समझ में नहीं आ सकता। उन दिनों गुरु भक्ति का बहुत महत्त्व माना जाता था।

सिद्धों में भी इसका महत्त्व था। गोरख से पहले कुमारिल भट्ट, जो शंकराचार्य के समय में थे, उनकी कथा इस गुरुभक्ति पर विशेष प्रकाश डालती है। ब्राह्मण धर्म को फिर से स्थापित करना चाहते थे। बौद्धों को इसके लिये हराने की बड़ी आवश्यकता थी। सोचकर वे बौद्ध हो गये और उन्होंने बौद्ध गुरु से सारा बौद्धज्ञान प्राप्त किया। तब तक ऐसे छिपे रहे कि अपने को तनिक भी प्रगट नहीं होने दिया। उनका विचार यह था कि बौद्ध तो ब्राह्मणों के वेद उपनिषद् जान लेते हैं और खंडन कर देते हैं, परन्तु ब्राह्मण बौद्धों से घृणा करने के कारण उनके ग्रन्थों को नहीं पढ़ पाते। जब उन्होंने सब पढ़ लिया तो लगे बौद्धों का खंडन करने। इसमें उन्हें अपने गुरु से भी शास्त्रार्थ करना पड़ा। शास्त्रार्थ में गुरु हारे और कुमारिल जीत गये। किन्तु अपना कार्य कर चुकने पर कुमारिल को इसका बड़ा दुख था कि उन्हीं के द्वारा परास्त किये जाने से

गुरु धर्मपाल का सम्मान घट गया था। वेद की रक्षा तो कुमारिल कर चुके थे, परन्तु व्यक्तिगत रूप से तो उन्होंने गुरु की निंदा की ही थी। इस पाप का तो उन्हें प्रायश्चित्त करना ही था। इसीलिये वे जीवित ही तुषानल में जल मरे और उन्होंने दोनों पक्षों में अपनी दृढ़ता का निर्वाह कर दिखाया।

गुरु-भक्ति की यह परंपरा कबीर में भी थी और सूफियों में भी थी। मध्यकाल के सन्त सम्प्रदायों में प्रायः ही गुरु भक्ति का मुख्य महत्त्व था। दक्षिण के आचार्यों ने जो संप्रदाय स्थापित किये थे, उनमें भी गुरु-महत्त्व था। वस्तुतः गुरु-भक्ति का इतिहास में बड़ा बुरा परिणाम होता है। महापुरुष के बाद उसके व्यक्तित्व को समाजपक्ष से अलग कर लिया जाता है। हर गुरु एक विशेष समाज में होता है, अतः बहुत सी बातें वह अपने युग की ही कहता है। परन्तु शिष्यवर्ग गुरु की हर बात को मक्षिकास्थानेमक्षिका के रूप में ग्रहण करते हैं और इस प्रकार वह बात जो गुरु अच्छाई के रूप में कहता है, शिष्यों के हाथ में पड़ कर वह रूढ़ हो जाती है। उदाहरण के लिये मुहम्मद पैग़म्बर के समय युद्ध में हो जाने से एक कबीले में विधवाएँ अधिक हो गईं। अनाचार बढ़ने लगा। दूसरे कबीलों में उन दिनों एक और बात यह भी थी कि एक-एक अरब कई कई औरतें रखता था। इन दोनों अनाचारों को देख कर पैग़म्बर ने नियम बनाया कि एक पुरुष चार स्त्रियों तक को पत्नी बना ले। इस प्रकार पैग़म्बर ने दोनों प्रकार के अनाचार रोके और उस युग के हिसाब से उस समय वह ठीक बैठ गया। स्त्रियों को पति मिल गये, और इधर पुरुषों पर भी रोक लग गई। पर चूंकि पैगम्बर ने कहा था, वह बात पत्थर की लकीर बन गई और अब भी वैसी ही मानी जाती है।

गुरु-पूजा का यह सामाजिक पक्ष असल में तो न जाने कितना पुराना है, पर बहुत अधिक बढ़ा यह गौतम बुद्ध के बाद। हालाँकि गौतम बुद्ध ने कहा था कि उपदेश को पानी की नौका समझो, उस नाव को धरती पर पहुँच कर लादे लादे मत फिरो। पर हुआ उल्टा ही।

बुद्ध में भी एक कमजोरी थी। उन्होंने अपने को बुद्ध कहा और अपने मार्ग को सद्धर्म्य। यानी अकेले अक्लमंद उनके हिसाब से वही थे और बाकी मार्ग सब अच्छे धर्म नहीं थे। यह असहिष्णुता और अहङ्कार की ही अभिव्यक्ति थी। जब बुद्ध नहीं रहे तब चेलों ने पहले तो उनके सामान को सम्मान के साथ जुटाया, जैसे अब गांधीजी की चप्पल की फोटो छपती है। अगर वह चीजें अजायबघर में रखी जायें तो शायद इनका अलग महत्त्व हो। पर बुद्ध के बाद अशोक के समय में पेड़, और चरण चिह्नों के रूप में बुद्ध की पूजा शुरू हो गई। फिर विदेशी जातियाँ आईं भारत में। उनका संपर्क बढ़ा। कुछ वैष्णवों का भी जनता पर प्रभाव बढ़ रहा था। वैष्णवों में मूर्त्ति पूजा थी। बौद्ध भी बनाने लगे और बुद्ध भगवान बन गये। कुछ समय बाद बौद्धों में दो दल हो गये। एक का मत था कि बुद्ध पृथ्वी के वासी मनुष्य थे, दूसरे दल ने कहा : वे स्वर्ग में हुए थे, पृथ्वी पर आये ही नहीं थे। यों गौतमबुद्ध बोधि-सत्व बने। वैष्णवों के अवतारवाद से जनता में बड़ा सन्तोष पहुँचा कि विष्णु बार बार लोक रक्षा करते हैं, तो बोधिसत्व भी बार बार जन्म लेने लगे। फिर ध्यानीबुद्ध बने और फिर उनके ब्याह हुए और आगे की बात तो हमने स्पष्ट कर ही दी है। बौद्धमत का भारत में इस प्रकार अन्त हुआ कि—

(१) बौद्ध धर्म अपने असली रूप से कहीं अधिक बदल चुका था।

(२) शंकर का ब्रह्मवाद ऐसा था जिसने बौद्धों को दार्शनिक पक्ष में खोखला कर दिया।

(३) गोरखनाथ ने उनके ताँत्रिक और योग पक्ष को अपने ब्रह्मचर्य के द्वारा खोखला कर डाला।

अब बौद्ध मठ रह गये व्यभिचार, जादू टोने और जड़ता के अड्डे। लोकमत तो हटता जा रहा था। पर वे जीवित थे क्योंकि राजाओं का धन प्राप्त था। बौद्ध धर्म सदैव राजाओं के बल पर जिया। स्वयं बुद्ध के समय में उसमें बुद्ध की जाति के क्षत्रिय ही अधिकतर दीक्षित हुए थे, क्योंकि वे ब्राह्मण धर्म के विरोधी थे। ब्राह्मणों ने अनार्य देवी-देवताओं

को स्वीकार करके, अनार्य उपासनाएँ अपनाकर, वैदिक धर्म को पीछे हटाकर, असल में गृहस्थ धर्म का पल्ला पकड़ा। इसीलिये वह राज्याश्रय का इच्छुक नहीं था। यह भी एक महत्व की बात है कि प्रायः ही ब्राह्मणवाद के विरोधी संप्रदाय सब गृहस्थ धर्म की ब्राह्मण की तुलना में बहुत अधिक निन्दा करने वाले रहे हैं। तो बौद्धमत जब राज्याश्रय पर रह गया तभी उस पर एक गहरी चोट दी तुर्कों ने। तुर्क बर्बर कबीलों के लोग थे। वे हो गये मुसलमान, तो उन्हें लगने लगा कि सारा सत्य हाथ आ गया। उनके पीछे कोई मानवतावादी सहिष्णु परंपरा तो थी नहीं। अरब का धर्म और ईरान की संस्कृति—इन दोनों ने तुर्कों को कट्टरता और अहङ्कार से भरा और जनसाधारण तुर्क में भी वही गर्व था जो 'सद्धर्म्म' के प्रचारक में था। बौद्ध भी 'एक संसार' बनाना चाहते थे, इस्लाम संप्रदाय वालों का भी यही सुपना था। तुर्कों ने इनके विहारों का अपार धन खूब लूटा और इस प्रकार बौद्ध धर्म को नष्ट किया। उस समय जो बौद्ध कि योगमार्गी थे, और वाममार्ग को छोड़ सके, वे योगमार्गी होने के कारण या तो योगियों में जा मिले, या शैवों में और अन्ततोगत्वा हिन्दू हो गये, और जो बहुत ही शत्रु थे, ब्राह्मण को देख भी नहीं सकते थे, कुछ घृणा के कारण, कुछ वर्णधर्म के विरोधी होने के कारण, कुछ ब्राह्मणों के शासन में आर्थिक रूप से पिसे होने के कारण, उन्होंने मुहम्मद पैगम्बर को भी बोधिसत्व का ही एक अवतार माना और मुसलमान हो गये। मुसलमान लोग भारत में बौद्ध और अवैदिक शैव जातियों के रहने के स्थानों में अधिक मिलते हैं। सिंध, पंजाब, काश्मीर और सीमाप्रान्त तथा बंगाल। इस्लाम में बिरादराना ताल्लुक थे, जातिप्रथा नहीं थी। काफ़ी खानपान की स्वतंत्रता थी। बौद्धों के बोधिसत्व वज्रयान के बाद पढ़े लिखे लोगों में ही अनीश्वरवाद थे, जनसाधारण तो बुद्ध, बोधिसत्व और ध्यानी बुद्धों को भगवान ही मानती थी। हाँ मानती थी शून्य, परन्तु अभावात्मक नहीं। अल्लाह भी ऐसा ही था। उसे स्वीकार करने में कष्ट नहीं था। इस्लाम में एक ही बात थी कि सोचने की आजादी नहीं थी, पर सोचने

की बौद्धमतावलंबियों को ऐसी तकलीफ़ भी न थी। तकलीफ़ थी ब्राह्मणवाद से, जो हल हो गई।

बौद्धों के अन्तिम दिनों में गोरखनाथ ने क्या किया यही हमने यहाँ स्पष्ट किया है। दुर्भाग्य से गोरखनाथ के बाद उनके नाम पर भी एक अलग पंथ चला, हालाँकि परंपरा कहती है कि गोरख ने छः अपने छः शिव के पंथ चलाये। इससे तो यही लगता है कि गोरख ने अपना कोई पंथ नहीं चलाया, केवल पंथों का सुधार किया, आदिनाथ के मार्ग में उन्हें लगाया और उस व्यक्ति ने इसका श्रेय भी मत्स्येन्द्र को ही देना चाहा। परंतु निस्संदेह वह शिष्य अपने गुरु से कहीं बड़ा नेता था। असली प्रवर्त्तक वही माना गया। जब प्राचीन नाथमत गोरक्षपंथ बना तो शिष्यों ने गुरुवाणी को ज्यों की त्यों रखने की चेष्टा की। गोरख के वाक्य या पद जो विशेष परिस्थितियों में कहे गये थे, उन्हें उनकी परिस्थितियों से हटा दिया गया। अब गोरखनाथ का समाजपक्ष तो हट गया, प्रयत्न हुआ पंथ संरक्षण। उसमें यह मार्ग व्यक्तिपरक हो गया। यद्यपि योगिसंप्रदाय और विशेषकर गोरखनाथ का बहुत दिनों तक प्रजा के लिये लड़ता रहा, परंतु उसका वह संदेश खो गया जो गोरख ने दिया था। गोरख के बाद बहुत से ऐसे सम्प्रदाय भी आ घुसे पंथ में, जिन्होंने वाममार्ग को भी बनाये रखने का तरीका निकाल लिया। अब योगी खाने कमाने वाले हो गये और गोरख ने जो सिद्धि दिखाने को निम्न कोटि का कार्य माना था, वह इन जोगियों का हथकण्डा बन गई। धीरे धीरे इनका प्रभाव हटता चला गया और कबीर ने इन्हें उखाड़ डाला। गोरख ने अनेक अन्धविश्वासों से युद्ध किया था। परन्तु बाद के जोगियों ने उन्हें प्रश्रय दिया।

गोरख के नाम से जो कविताएँ मिलती हैं, दुर्भाग्य से वे गोरख के युग की भाषा में नहीं है। चेलों के मुँह में वह अपनी भाषा बदलती चली गई हैं। कुछ संस्कृत ग्रंथ उनके द्वारा रचित अवश्य मिलते हैं। उनमें तो दर्शन और योग की बातें ही अधिक हैं क्योंकि संस्कृत में लिखे

ग्रंथ पढ़े लिखों के लिये थे। उनकी जनभाषा की रचनाओं में यद्यपि-पंथ–पण्डित निन्दा इत्यादि समाजपक्ष के पद आदि मिलते हैं, पर शायद वे कहीं अधिक रहे होंगे। इसका आभास इसी में मिलता है कि कबीर के कहीं अधिक मिलते हैं। गोरख भी फक्कड़पन में कबीर से कम नहीं थे। गोरख की रचनाओं की भाषा अब सधुक्कड़ी हिन्दी है जबकि उसे मिलना चाहिये था, अपभ्रंश के रूप में।

परिशिष्ट—२

प्रस्तुत उपन्यास में गोरख का सामाजिक पक्ष जो दिखाया गया है उससे भ्रम न हो इसलिये यहाँ बता दूँ कि गोरख पंथ के नाम से बारह पंथ चलते हैं। कहते हैं गोरखनाथ ने कई योग पंथों का सुधार किया था।

अब भी गोरख पंथ में शिव प्रवर्त्तित अनेक पंथ हैं जो गोरखनाथ को गुरु मानते हैं।

कण्ठर नाथी, रावल संप्रदाय, पागलपंथी, पंख, कपिलानी, हेठ-नाथी, आई पंथी, बैराग पंथी, पावनाथी, धजनाथी इत्यादि सब गोरख पंथ के अन्तर्गत हैं। गोरखनाथियों का जाल अब भी सारे भारत में फैला है। अंधकार भरे इस युग को चित्रित करना बहुत कठिन काम था। परन्तु जब तक उसका दार्शनिक पक्ष उजागर न किया जाता, प्रयत्न व्यर्थ जाता। आखिर यह जो भारत में मनुष्य ने प्रयोग किये थे उनका परिचय देना तो आवश्यक था ही।

गोखरनाथ का सुपना शायद प्लेटो के दार्शनिक राजाओं की भांति योगियों का उत्थान करना था। भारतीय मध्यकाल में जो सामंतीय

व्यवस्था का गतिरोध था उसमें यह योग और सिद्धमार्ग निम्न जातियों के विद्रोह के रूप में तो था ही, परन्तु इसमें तमाम अनार्य और पुरानी कायायोग की साधनाएँ भी आ गई थीं। गोरख ने उन्हें शुद्ध किया। यह जो कथाएँ हैं कि मत्स्येन्द्र का वीरभद्र, हनुमान, महाकाली आदि से संघर्ष हुआ था, यह सब भी यही बताता है कि इनके उपासकों से मत्स्येन्द्र की टक्कर हुई थी।

गोरखनाथ का प्रभाव उनके बाद पाँच ६ शताब्दियों तक सशक्त रहा। किन्तु जैसे हर गुरु के बाद शिष्य उसकी बात को बिगाड़ते हैं, उसी भाँति गोरख के साथ भी हुआ। योगियों के मठ बने, धन इकट्ठा हुआ। योगियों का अगला रूप हमने 'जब आवैगी काल घटा' में लिया है। उसका अगला रूप हमने 'लखिमा की आखें' में दिखाया है। उनके पतन का समय स्पष्ट है 'लोई का ताना' में।

गोरखनाथ के बाद उनके साथ असंख्य कहानियाँ जुड़ीं। उनसे बहुत बड़ा चक्कर हमारे सामने भी खड़ा हुआ। हमने उन कथाओं को फटक कर देखा है।

गोरखनाथ ब्राह्मण विरोधी थे। योगी दल भी ब्राह्मण विरोधी था। एक ओर बौद्ध थे—दूसरी ओर यह शैव योगी, तीसरी ओर ब्राह्मण धर्म और चौथी ओर इस्लाम। पहले तो यह योगी अपने को अलग मानते थे, परन्तु इस्लाम के अनुयायी तुर्क लोग बौद्ध, योगी और ब्राह्मण का भेद न देख सके। उन्होंने तीनों को एक ही खड्ग से काटा, क्योंकि वे तो अपने को सर्वश्रेष्ठ समझते थे। योगी, बौद्ध और ब्राह्मण घोर शत्रु होकर भी, इस घोर असहिष्णुता को नहीं देख पाये थे। उस समय जो शैव और बौद्ध ब्राह्मणों से समझौता ही नहीं कर पाये वे तो मुसलमान हो गये, परन्तु बाकी लोग ब्राह्मणों से मिल गये। संप्रदाय अलग ही रहे पर उन्होंने ब्राह्मण विरोध छोड़ दिया और सारे भारत के मतान्तर भाषा और सांस्कृतिक एकता की भूमि के कारण मुसलमान विरोधी हो गये। वैसे इस्लाम के आगमन के समय इन योगमार्गिओं का मुसलमानों पर गहरा पड़ा था जो सूफी संप्रदाय में स्पष्ट

है। ये सूफ़ी कट्टर नहीं थे, सहिष्णु थे। यह सूफ़ी असल में वेद वाह्य शैव, या बौद्ध ही थे जो अरबों की तलवार के नीचे जबरन मुसलमान बना लिये गये थे। उनमें पुरानी परंपराएँ बाकी थीं। इन योगमार्ग से प्रभावित मुसलमान सूफ़ियों का रूप हमने अपने 'कुम्हार की भूल' नामक ग्रंथ में लिया है।

इतिहास में युगों को अलग और एक साथ देख कर ही हमें उनका युगानुरूप चित्रण करना चाहिये।

परिशिष्ट—२

पुराने शिवलिंग जो मिले हैं उनके साथ योनि का चिह्न नहीं होता था। अब जो मिलते हैं वे एक योनि की नकल के दायरे में बनाये जाते हैं। ग़ौर से देखने पर मिलता है कि उसमें लिंग के चारों तरफ एक साँपिन भी बनाई जाती है। वह कुण्डलिनी है। गोरखनाथ से पहले यह इस तरह नहीं बनती थी। गोरखनाथ चूँकि यह मानते थे कि शरीर के भीतर ही लिंग है और योनि भी भीतर ही है, और कुण्डलिनी ही शक्ति रूप में देह के भीतर ही रहती है, इनको देह के भीतर मिलाने से शिवत्व प्राप्त होता है, उसी का प्रतीक बन कर यह आकृति मन्दिरों, चैत्यों में प्रचलित हुई। बहुधा लोग यह मानते नहीं कि हमारे पूर्वज लिंग पूजा का यह अर्थ लगाते थे। परन्तु उन्हें याद रखना चाहिये कि पूर्वज और तरह से सोचते थे। वे चूँकि लिंग और योनि के मिलन से सृष्टि होती देखते थे, वे इसे गन्दा नहीं मानते थे, वरन् इसे पूज्य मानते थे और उनके दर्शन में भी इसकी व्याख्या होती थी। आरम्भ इसका जिस तरह हुआ वह हम पहले बता चुके हैं। बाद में इसका अर्थ जब

दार्शनिक पक्ष में आ गया तब इसको दूसरे ही पक्ष में लिया जाने लगा। गोरखनाथ के बाद तो इसे अध्यात्म और योगपक्ष की ही बात के रूप में माना गया।

तंत्रों में जो त्रिकोण बनते हैं, वे भी लिंग और योनि के ही पुराने प्रतीक थे। बाद में उनके भी दार्शनिक अर्थ प्रचलित हो गये। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति अनेक प्रयोगों में से गुजरती हुई अपना वर्त्तमान-स्वरूप प्राप्त कर सकी है। यह विचित्रता इसी देश में है कि आपको बहुत बहुत पुराने स्तरों की चीज़ें किसी न किसी रूप में विकास कर रूप बदल कर भी मिल ही जाती हैं, यद्यपि काल ने बहुत कुछ नष्ट भी कर दिया है। सचमुच मनुष्य ने युग युग में कितनी तरह से अपनी युग-सीमाओं में सत्य को खोजने के लिये कितने कितने प्रयोग किये हैं। कामुकता और उच्छृङ्खल विलास को दार्शनिक पृष्ठभूमि देकर इतने व्यापक पैमाने पर भारत की तरह संभवतः किसी ने भी प्रयोग नहीं किया। और सारी परंपराएँ रूप बदल कर वैष्णव भक्ति में ऐसी अंतर्भुक्त हो गईं कि पता भी नहीं चलता।

परिशिष्ट—४

मेरे मित्रों का विचार है कि योग बुद्धि का विकास नहीं करता। वह तो शरीर और मन का संतुलन मात्र है जिससे मनुष्य अपनी 'इच्छा से प्रकृति पर काबू करता है। उसमें केवल वैयक्तिक विकास ही है जो समाज के लिये लाभदायक नहीं है। अभी तक मनुष्य का विकास बुद्धि ने किया है और उसी से वैज्ञानिक प्रगति के द्वारा उसने प्रकृति पर इतनी विजय पाई है, प्रकृति की इतनी जानकारी प्राप्त की है।

किंतु यहाँ हम यह भूल क्यों करें कि योग जो अब है उसी को योग का सर्वोच्चस्तर मानलें। अपने जादू, टोने, तंत्र, यंत्र, ईश्वरवाद, अनीश्वरवाद, संभोग, ब्रह्मचर्य आदि के बीच में, अपने प्राचीन आदिम और फिर मध्यकालीन विश्वासों में भी वर्त्तमान अवस्था तक आने वाला 'योग' वास्तव में अभी बहुत ही प्रारंभिक अवस्था में है। उसका वैज्ञानिक ढंग से कोई विश्लेषण यदि है, तो प्रारंभिक ग्रंथ पातंजल योग सूत्र है, जो भीं अब प्राचीन पड़ गया है। योग का तो वास्तविक विकास अब होगा। मनुष्य की वे शक्तियाँ जो अब तक के विद्वान और विज्ञान ने नहीं बताईं, योग अपनी बहुत ही प्रारंभिक अवस्था में उन्हें दिखाकर लोगों को चमत्कृत कर चुका है। योग से रोगों का भी लोग इलाज करते हैं।

अपने प्रारंभिक काल में गोरख का एक ऐसा ही प्रयोग था। यह कहना कि गोरख का केन्द्र योग पक्ष था, समाज नहीं एकाँगी दृष्टिकोण है। गोरख जागरूक थे। योग पक्ष का विकास क्या साधारण मनुष्य के लिये कुछ लाभ नहीं रखता था ? कुछ का मत है कि गोरख, कबीर और तुलसी जैसे इस विषय में नहीं थे। परंतु यह गलत है। गोरख ने एक अति को हटाया इसलिये उनमें अतिवाद अवश्य है। परंतु उनका जो अन्यों का खण्डन था वह अभावात्मक नहीं था।

समाज पक्ष में गोरख ने क्या किया ?

(१) गोरख ने विकृत साधनाओं, नरबलि, जादू, टोने, निम्नकोटि के देवताओं देवियों, और ऐसी निकृष्ट साधनाओं को रोककर, उनके नामपर खाने कमाने वालों का धंधा रोका। प्रजा का भय दूर किया।

(२) गोरख ने वाममार्ग को रोक कर स्त्री की मर्यादा बढ़ाई और समाज से व्यभिचार को हटाया।

(३) गोरख ने जाति प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई और मनुष्यमात्र को जाति विषय में समान माना, हिन्दू भी यहाँ तक कि मुसलमान को भी वह उपनिषद् और शंकर की परंपरा का एकेश्वरवाद था जिसने असंख्य देवी देवताओं को हटाकर ज्योतिः स्वरूप को ही श्रेष्ठतम मानकर,

समाज को एक्य की ओर बढ़ाया।

(४) गोरख ने सब धर्मों को छोटा मानकर योगमार्ग की प्रतिष्ठा की और योगमार्ग में न जाति भेद था, न वर्ण भेद। इस प्रकार उसने विकास का एक नया मार्ग समाज के सामने रखा। इस योगमार्ग में विकास करके कोई भी ऊँचाई पर उठ सकता था। इसका समाज पर प्रभाव पड़ा।

(५) गोरख ने स्त्री की घोर निंदा की। एक तो कारण था योनि-पूजा की अति के विरुद्ध अतिवाद। दूसरा कारण यह भी है कि गोरख ने वह निन्दा मुख्यतया योगी को लक्ष्य करके कही है। गृहस्थ को नहीं। निस्संदेह गोरख योगी को गृहस्थ से ऊँचा मानता था, परन्तु गोरख ने कनफटा, औघड़ और गृहस्थ तीनों प्रकार के अधिकारियों को स्वीकार करके यह प्रमाणित किया है कि मनुष्य समान हैं, परंतु उनकी सामर्थ्य के अनुसार भेद पड़ सकता है।

अधिकार भेद की स्वीकृति से योगी यद्यपि सर्वश्रेष्ठ माना गया, परन्तु गोरख ने जो उपदेश सहज रूप से सर्वमान्य रूप से दिये हैं उसमें गृहस्थ को भी विषयों से बचने को कहा है! इसमें गोरख का ही क्या दोष। वैष्णव, शैव, तुलसीदास, कबीरदास भी एक से है। इनके समय में योनि पूजा की विभीषिका यदि जबर्दस्त होती तो शायद यह और भी जोर से स्त्री निन्दा करते। हमें व्यक्ति के युग की परिस्थितियाँ भी तो देखनी चाहियें।

(६) यह कहना कि गोरख का जनता पर डर का भाव था, और कबीर से प्रेम था, गलत है। गोरख का क्या कम विरोध हुआ था? गुरु को छुड़ाने तो उसे स्त्री रूप तक धारण करना पड़ा था। गोरख ने योगिरूप धारण करके जो सिंध के पीर से युद्ध किया था वह कथा स्पष्ट करती है कि पीर प्रजा पर भार था, जबर्दस्ती 'भिक्षा दो या मरो' कहता था। उसका बल तोड़कर गोरख ने प्रजा का लाभ किया।

(७) गोरख ने त्रिशूल उठाकर प्रजा की रक्षा की। कथा भी मिलती है कि गोरख ने नेपाल में मत्स्येन्द्री जाति को मुक्ति दिलाई थी। अति-

रिक्त इसके गोरख का ही बीज था जिसने योगियों के हाथ में खड्ग दिया, जिससे उन्होंने तुर्कों से निरंतर युद्ध करके प्रजा की रक्षा की। यह योगी ही घोड़ों पर चढ़ कर मेलों, पर्वों और सांस्कृतिक मिलनोत्सवों में जनता की तुर्कों के कट्टर हमलों से रक्षा करते थे।

(८) स्त्री पर गोरख का भयानक हमला उन पदों में ही मुख्य है जहाँ वे गुरु को उपदेश देते हैं। और गुरु योगी थें।

(९) गोरख ने शङ्कर की भाँति एकेश्वर तो माना, परन्तु शङ्कर के ब्रह्म की भाँति उनके परमशिव की वह निचली मंज़िल सिसृक्षा बनी, न कि ईश्वर (जडमाया+ब्रह्म) जिसके कारण वर्णधर्म को वह छूट नहीं मिली, जो शङ्कर के दर्शन में वर्णधर्म जीवित रखने को मिलती थी। यह भी गोरख ने लोक-कल्याण किया था।

अवश्य ही गोरख का उद्देश्य धर्म को ठीक करना था। धर्म को ठीक करना जनता को राह दिखाना-था। गोरख ने योग मार्ग दिखाया। इस योग मार्ग के दोनों पक्ष हमने दिखा दिये हैं। अब भी क्या गोरख के समाज पक्ष को व्यक्ति पक्ष कहा जा सकता है ?